प्रेम से नारायण नारायण कहना है ।

जाही विधि राखे प्रभू ताही विधि रहना है ।।

तन मन धन कुछ अपना न मान कर।

जो भी आये जाये सब प्रभू का ही जान कर।

मन की प्रतिकूलता को धैर्य से ही सहना है ।।

जाही विधि राखे प्रभू ताही विधि रहना है ।।

बन्धन दुःखों की जड़ आत्म अज्ञान है ।

आत्मज्ञान होता जब स्वयं में ही ध्यान है ।

ध्यानी को धन मान भोग नहीं चहना है ।

जाही विधि राखे प्रभू ताही विधि रहना है ।।

चाह के त्याग में प्रेम ही समर्थ है ।

चाह की पूर्ति का लोभ ही अनर्थ है ।

जीवन प्रवाह है प्रेम से ही बहना है ।।

जाही विधि राखे प्रभू ताही विधि रहना है ।।

प्रेम में सेवा की त्याग की शक्ति है ।

प्रेम में परम गति मिलती प्रभू भक्ति है ।
प्रेम में पथिक नित्य समता को गहना है ।।
जाही विधि राखे प्रभू ताही विधि रहना है ।।

श्री परमात्मने नमः

गुरू–वाक्य

(प्रथम भाग)

मन्त्र मूलं गुरूर्वाक्य पूजा मूलं गुरू पदं ।
ध्यान मूलं गुरूमूर्ति मोक्ष मूलं गुरू कृपा ।।

1– अज्ञान रूपी अन्धकार को मिटाने के लिए जो प्रकाश स्वरूप है वही गुरू है ।

2– असत संग के प्रभाव से जीवन में व्याप्त विषय रूपी विष जिन वाक्यों से उतर जाता है

वही गुरू मन्त्र है ।

3– जिसमें गुरू तत्व प्रतिष्ठित है वही पूजा के योग्य गुरू पद है ।

4– गुरू की वास्तविक मूर्ति केवल ज्ञान स्वरूप है वही ध्यान से दर्शनीय तत्व है ।

5– समस्त बन्धनों को जिसके द्वारा निवृत्ति होती है उस विवेक की प्राप्ति, गुरू कृपा है ।

6– कोई गुरू मन्त्र, संकट से, ममता से, लोभ से, अभिमान से, आसक्ति से, कामना से, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्रोध से, तथा निन्दा घृणा आदि विकारों से छुड़ाने वाले होते हैं ।

7– कोई गुरू मन्त्र, दिब्य गुणों के बढ़ाने वाले होते हैं ।

8– कोई गुरू मन्त्र, देवताओं से अथवा भगवान से सम्बन्ध बनाने वाले होते हैं ।

9– कहीं कहीं मानव समाज में मारण, मोहन,

वशीकरण, उच्चाटन मन्त्रों का प्रयोग सुना जाता है । मन्त्रों के प्रभाव से सर्प बिच्छु कुत्ता आदि विषैले जन्तुओं के काटने का विष उतर जाता है। उसी भांति गुरू मन्त्रों के प्रयोग से मन चित्त बुद्धि अहंकार में व्याप्त विष की निवृत्ति होती है ।

यह गुरू मन्त्र अनेकों सन्तों महात्माओं सदग्रन्थों सदशास्त्रों द्वारा कल्याणार्थी परमार्थी साधक को सुगम होते रहते हैं । उन्हीं गुरू मन्त्र को अधिकारी साधकों के हितार्थ प्रकाशित किया जा रहा है ।

10- प्रायः अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर, पन्चाक्षर तथा षोड़शाक्षर मन्त्र एवं देवी देवताओं के अनेकों मन्त्र प्रचलित है। इस पुस्तक में जो गुरू वाक्य दिये जा रहे हैं यह ऐसे अदभुत मन्त्र हैं जिनके प्रयोग से संग दोष की निवृत्ति अर्थात् ममता आसक्ति कामना, अहंता

की निवृत्ति हो सकती है ।

11- आस्था, श्रद्धा, विश्वास पूर्वक सतत साधना से ही मन्त्रों द्वारा सिद्धि संसिद्धि परम सिद्धि प्राप्त होती है ।

12- कोई कल्पना न करो, कुछ मानकर प्रतीक्षा न करो, पुनः शून्य चित्त में जो दर्शन हो वही सत्य दर्शन है ।

13- दृश्य से दृष्टा की ओर लौटना ही जागरण है ।

14- दृश्य और दृष्टा के विलीन होने पर जो समग्रता से शेष रहता है वही सत्य हैं ।

15- आत्मा मेरी तेरी नहीं है। आत्म सत्ता सब में है, वह किसी की नहीं है ।

16- बाहर बहुत देख चुके हो बहुत प्रश्न कर चुके हो, अब दृष्टि को भीतर लौटाओ भीतर प्रश्न करो, मौन होकर उत्तर की प्रतीक्षा

करो ।

17– समस्त भोग अज्ञान में हैं। पूर्ण त्याग तो ज्ञान में ही है। पूर्ण त्याग में ज्ञानी भी नहीं रह जाता है। केवल प्रेम शेष रहता है। ज्ञान वही जो सर्व को प्रकाशित करता है ।

18– समस्त भय तथा हिन्सा, एवं परिग्रह संग्रह और तृष्णा अज्ञान में है । स्वयं को न जानना ही अज्ञान है ।

19– अज्ञान में ही समस्त बन्धन हैं । अज्ञान में ही असत संग है, ज्ञान में ही सत्संग है ।

20– ज्ञेय और ज्ञाता से मुक्त शुद्ध ज्ञान ही आत्मा है। जो अनन्त है, असीम चेतना के रूप मं विराजमान स्वरूप है वही सत्य है ।

21– सीमा में रहना दुःख है असीम में होना आनन्द है। शान्ति में, मुक्ति में, भक्ति

में योगानुभूति में बाधक वे इच्छायें हैं जिन्हें तुम पूरे नहीं कर सके या जिनका त्याग नहीं कर सके ।

22- इच्छाओं ने ही परमात्मा से विमुख बनाया है, जहाँ कोई कामना नहीं चाह नहीं वहीं भगवान से दूरी मिट जाती है ।

23- परम्परायें, रूढ़ियाँ, अन्य विश्वास, शब्द, मान्यतायें, तुम्हारे मनों को बाँधे हुए हैं । स्वतंत्र होकर तुम सत्य को पा सकते हो । अपनी स्वीकृतियों से ही तुम परतन्त्र हो ।

24- मनुष्यता ही आरम्भ है, दिव्यता ही सदगति है । परमात्मा ही परम गति है, परमात्मा में होना ही अन्त है ।

25- अकिन्चनत्व से लोभ मिटता है । लोभ मिटते ही तृष्णा मिटती है । तृष्णा मिटते ही मोह मिटता है । मोह मिटते ही दुःख मिटता

है ।

26- काम, पाप प्रेरक है। क्रोध पाप करता है । लोभ पाप के वश में हो जाता है ।

27- ममता न रहने पर निष्कामता आती है । निष्काम ही असंग होता है असंगता में ही अभिन्नता होती है ।

28- राग द्वेष, अभिमान, लोभ, मायावी नाम के रहते हिन्सा होती ही रहती है ।

29- जितना प्रेम देह से है उतना ही जब सभी प्राणियों से होगा तभी अहिन्सा व्रत पूर्ण होगा ।

30- इच्छा द्वेष क्रोध कलह निन्दा घृणा के रहते अपना अथवा दूसरों का हित नहीं हो पाता।

31- इच्छायें ही मनुष्य को वस्तु एवं व्यक्ति की दासता में बाँध देती है । इच्छायें याचक

बनती है ।

32- जिसका अपने ऊपर अधिकार हो उसकी पूर्ति करो, अपनी इच्छा की पूर्ति न चाहो ।

33- प्रेम की प्रागाढ़ता में अपनी इच्छा नहीं रहा करती ।

34- प्राणायाम द्वारा राग का, धारणाओं द्वारा पाप का, ध्यान द्वारा नास्तिकता तथा ईर्ष्या द्वेष का नाश होगा ।

35- किसी के साथ कठोर व्यवहार करते हुए धन के, ऐश्वर्य के, पदाधिकार के मद को न देख पाना ही अन्धापन है ।

36- विवेकी साधक अपने रूप में ही परमात्मा की उपासना करते हैं ।

37- बुद्धि स्थिर न होने के दस कारण हैं

(1) प्राप्त में असन्तोष (2) वस्तुओं की कामना (3) राग द्वेष (4) विषमता

(5) असहिष्णुता (6) इन्द्रियाँ पर अनाधिकार (7) भय (8) क्रोध (9) तृष्णा (10) सुखासक्ति

38- मोही, अपनी मानकर भोगता है ।

39- त्यागी, अपनी मानकर छोड़ता है ।

40- अभिमानी दानी, अपनी मानकर देता है ।

41- ज्ञान में सावधान प्रभु का ही सब कुछ देखता है ।

42- प्रेम में तृप्त, केवल प्रभु को ही मानता जानता है ।

43- शून्य होने पर स्वयं में और प्रेम में होकर सब में परमात्मा का अनुभव होता है ।

44- ज्ञान द्वारा प्रतिकूलताओं में स्वयं को शान्त रखना है योग द्वारा प्रतिकूलताओं को आने ही नहीं देना है ।

45- संसार से सम्बन्ध टूटने पर जिज्ञासु को बोध, भक्त को भगवान, साधक को योग, प्रेमी को प्रेम सुलभ हो जाता है । कुछ भी अपना न मानने से सम्बन्ध टूट जाता है।

46- अंहकार और प्रेम

जगत की ओर देखने वाला अहंकार से भरता है ।

प्रभू की ओर देखने वाला प्रेम से पूर्ण होता है ।

अहंकार सदा लेकर प्रसन्न होता है ।

प्रेम, सदा देकर सन्तुष्ट होता है ।

अहंकार को अकड़ने का अभ्यास है ।

प्रेम में सदा झुकने का, नम्रता का अभ्यास है ।

अहंकार जिस पर टूटता है उसे तोड़ देता है ।

प्रेम, जिस पर बरसता है उसे जोड़ देता है

।

अहंकार अपने प्रताप से दूसरों को तपाता है ।

प्रेम अपने प्रकाश से सबको शीतल करता है ।

अहंकार, छाया देकर छिन्न भिन्न करता हैं ।

प्रेम छाया देकर दूसरों को संयुक्त करता है ।

अहंकार, संग्रह से सन्तुष्ट होता है ।

प्रेम, बाँटकर तृप्त होता है ।

अहंकार, शक्ति सम्पत्ति से सम्पन्न होना चाहता है ।

प्रेम, शक्ति से सेवा करके सम्पत्ति को देकर प्रसन्न होता है ।

अहंकार, लेने की भाषा जानता है ।

प्रेम, देने की भाषा जनता है ।

अहंकार सदा सबके आगे होना चाहता है ।

प्रेम सबके पीछे होने में शान्त रहता है ।

अहंकार लेने के अवसर खोजता है ।

अहंकार संसार में सबसे अधिक पाकर भिखारी ही रहता है ।

प्रेम, अकिन्चन होकर पूर्ण धनी होता है ।

47- बाहर की सम्पदा विपदा लाती है स्वयं ही में सच्ची दिव्य सम्पदा है जो चुराई नहीं जा सकती ।

48- पूर्ण अकिन्चन होने पर ही कोई दैवी सम्पदा से धनी हो पाता है ।

49- वासना अहंता ममता आसक्तियों के रहते चित्त को बाहरी त्याग से शान्ति नहीं मिलती ।

50- चित्त का त्याग ही त्याग है ।

51- कुछ होने की आकांक्षा ही चित्त की

उपस्थिति है ।

52- चित्त को देखते-देखते चित्त के ज्ञान से ही चित्त से मुक्ति मिलती हैं ।

53- दूसरों के साथ व्यवहार बर्ताव करते हुए सावधान रहो क्योंकि जो दोगे वही तुम्हारे प्रति लौटेगा ।

54- प्रेम का उत्तर प्रेम से और घृणा का उत्तर घृणा से मिला करता है ।

55- जिससे अहंकार भरता जावे वही अधर्म और जिससे अहंकार सूखते-सूखते मिट जावे वही धर्म है ।

56- अहंकार के शून्य होने पर स्वरूप का बोध होता है ।

57- प्रकृति को, विकृति को, दुष्कृति को, सुकृति को, और अहंकृति को ज्ञान में जाग्रत होकर देखो ।

58- अहंकार की दरिद्रता को देखो, जो चोरी चोरी से मिले हुए पर अधिकार मान रहा है, प्रभुता के वस्त्र धारण कर रहा है ।

59- आत्मा नित्य शुद्ध अस्तित्व है, 'मैं' के हटने पर वही रह जाता है ।

60- जागरण वही है जिसमें विचार न उठें और चेतना का बोध हो । चेतना का बोध वही है जहॉ कोई विषय वृत्ति न हो ।

61- परमात्मा वहीं है जहाँ तुम स्वयं हो । ठहरो और देखो। राग, विराग, आसक्ति विरक्ति मोह घृणा ईर्ष्या क्रोध द्वेष लोभ सभी ही अहंकार की सन्ताने हैं ।

62- जब तक अहंकार कुछ बनना चाहता है, कुछ होना चाहता है, वहाँ तक अज्ञान ही समझो ।

63- तुम किसी को घृणा के द्वारा नहीं जीत

सकते, केवल प्रेम के द्वारा ही किसी पर अधिकार प्राप्त कर सकते हो । प्रेम भी यदि थोड़ा रहेगा तो बन्धन कारी होगा, प्रेम यदि भरपूर होगा, निष्काम होगा वहाँ बन्धन न होगा ।

64– प्रेम माँगने से नहीं मिलता अपितु देने से मिलता है । प्रेम ही परमात्मा का मन्दिर है ।

65– अपने आप और प्रेमास्पद प्रभु के मध्य भिन्नता भेद नहीं रहे यही प्रेम है । किसी के प्रति प्रेम होना ही आसक्ति है, मोह है, वासना है ।

66– साधक जब शून्य शान्त जाग्रत रहता है तब प्रभू दर्शन का अधिकारी होता है ।

67– राग आसक्ति लालसा, प्रेम की विकृति है ।

68- स्वयं में अदृश्य की अनुभूति को ही आत्मा कहते हैं ।

69- सर्व में अखण्ड सत्ता की अनुभूति का नाम परमात्मा है ।

गुरू वाक्यों से यह भी ज्ञात हो सका।

70- दृश्य में मन लगाने से आसक्ति होती है। मन में दृश्य का प्रभाव न रहे- यही अनासक्ति है ।

71- जिससे आसक्ति की निवृत्ति हो प्रीति की वृद्धि हों, दोषों का नाश हो, गुणों का विकास हो, अशक्तता के स्थान में शक्ति बढ़ती जाये, वही सुन्दर साधना है ।

72- देह का आलसी होना, इन्द्रियों में विलासिता, मन में असंयम, बुद्धि में अविवेक का होना आसक्ति के कुलक्षण हैं ।

73- निर्ममता, निष्कामता, निर्विकारिता तथा

शान्ति और असंगता से ही स्वाधीनता प्राप्त होती है।

74- निष्काम होकर योगानुभव करना, विनाशी से असंग रहकर सत्य का बोध प्राप्त करना, प्रभु के प्रति आत्मीयता द्वारा प्रेम प्राप्त करना स्वधर्म है ।

75- स्वयं से भिन्न देह इन्द्रियाँ तथा वस्तु व्यक्ति की अपेक्षा रखकर उन्हीं का आश्रय लेते रहता परधर्म है ।

76- जिससे संयोग वियोग होता है जो उत्पत्ति विनाश से युक्त है वही 'यह' है । पर के संग में ही पराधीनता है ।

77- अपने दर्शन से स्वतंत्रता और अनन्त जीवन का बोध होता है ।

78- पराधीनता तथा भेद एवं भिन्नता मिटे बिना योग बोध प्रेम नहीं होता ।

79- अहंकार एवं ममता न रहने पर प्रेम और प्रेमास्पद ही शेष रहता है प्रेमी नहीं रह जाता।

80- शरीर शव है इसमें आसक्ति रखना मूढ़ता है ।

81- शव के प्रकाशक शिव को जानना ज्ञान है ।

82- शब्द से संसार को और शब्द-शून्यता में सत्य को जाना जाता हैं।

83- अनेक चित्तों के प्रकाशक एक चेतन को जानना सत्य दर्शन है ।

84- जो किसी के बन्धन में नहीं और जिसके बन्धन में कोई नहीं वही स्वतन्त्र है ।

85- बीते हुए की याद व्यर्थ है, आगे की चिन्ता भी व्यर्थ है, अतः वर्तमान को देखो अकेले होकर विश्राम करो ।

86- विचार छोड़कर चेतना में प्रतिष्ठित होकर देखो ।

87- चित्त की तरंगे शान्त होने की प्रतीक्षा करो ।

88- चेतना में पूर्ण जाग्रत होने के लिए कुछ समय तक कुछ न करो जितनी अधिक देर तक शान्त रहोगे, विचारों से, स्मृति से, खाली रहोगे उतना ही परमात्मा की असीम सत्ता से अभिन्नता का अनुभव होगा ।

89- संस्कारों के अभाव में ही आत्मा का सदभाव दृढ़ होता है ।

90- प्रतिक्षण निषेध करते रहो तभी आत्मानुभूति की सजगता दृढ़ होगी ।

91- सभी विषयों से विरक्त होने को वैराग्य समझों ।

92- ध्यान से देखोगे तब ज्ञान होगा। ज्ञान

में ही दर्शन होगा ।

93- निर्मम होना, असंग होना, परम प्रभु से आत्मीयता होना, सिद्धिदायक पुरूषार्थ है।

94- जो अकिन्चन है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, जो शान्त है, समता में स्वस्थ है, जो आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, उसके लिए सभी ओर आनन्द ही आनन्द है।

95- प्रेम से भरे रहकर विराट भगवान को सन्तुष्ट करो । निष्काम सेवा द्वारा समाज को सन्तुष्ट करो । उदारता क्षमा प्रीति और निरभिमानता द्वारा जगत को सन्तुष्ट करो-यही मानव का पुरूषार्थ है ।

96- आत्मीयता से प्रीति पूर्ण होती है ।

97- भेद और भिन्नता मिटने पर भक्ति पूर्ण होती है ।

98- असंग होने पर, आसक्ति मिटने पर

मुक्ति मिलती है ।

99- ममता मिटने पर निर्विकारिता आती है ।

100- निष्काम होने पर शान्ति सुलभ होती है ।

101- प्रभु ही अपने हैं, अपने में ही हैं, इस स्वीकृति से प्रियता दृढ़ होती है ।

102- अपना कुछ भी नहीं मानने से आसक्ति मिटती है ।

103- भजन में बाधक-

(1) सर्वत्र मान प्रतिष्ठा (2) अति भाषण (3) ख्याति की वृद्धि (4) अधिक निद्रा (5) हिन्सा (6) धन का बढ़ते जाना (7) हास्य विनोद (8) क्रोध द्वेष (9) स्त्री में आसक्त होना (10) आलस्य (11) शौकीनी ।

104- साधक का कर्तब्य-

(1) सहन शीलता का अभ्यास (2) समय को व्यर्थ नष्ट न करने की सावधानी (3) भोग सुलभ होने पर भी इच्छा न करना (4) निरन्तर गुरू मन्त्र का स्मरण (5) निष्काम सेवा में सभी बलों का सदुपयोग ।

105- शान्ति सुलभ रहती है-

(1) ममता आसक्ति कामना के त्याग से (2) अहंकार को जानते हुए आत्म समर्पण से (3) समत्व योग से (4) कर्मो का फल न चाहने से (5) सत्य ज्ञान से (6) आत्मा परमात्मा के निरन्तर योग को स्मरण रखने से (7) सात्विक श्रद्धा से (8) परमात्मा में पूर्ण निर्भर रहने से (9) सभी के प्रति मैत्री भावना से (10) स्वयं में ही पूर्ण शान्त रहने से ।

106– जो दिखाई नहीं देता उस नित्य निरन्तर परमात्मा में आस्था रक्खों ।

107– उसके विधान में अमंगल न होने का विश्वास रक्खो ।

108– उसकी पूर्णता में श्रद्धा रक्खो ।

109– उसी में पूर्ण आत्मीयता दृढ़ करो ।

110– क्षण–क्षण नित्य जीवन का अनुभव करो ।

111– भविष्य के सम्बन्ध में कदापि न सोचो ।

112– प्रत्येक वस्तु व्यक्ति से असंग रहो ।

113– चिन्ताओं का बोझा कभी नहीं स्वीकार करो ।

114– किसी वस्तु की समाप्ति ही मृत्यु है। सम्बन्ध विच्छेद ही मृत्यु है ।

115– पुनः नवीनता ही जीवन है ।

116- सत्य परमात्मा चिर नवीन हैं ।

117- क्षण ही स्वयं में पूर्ण है, उसकी अनुभूति के लिये मन का अत्याधिक शान्त होना, पूर्व धारणाओं तथा कल्पनाओं को अस्वीकार करना, अत्यावश्यक है ।

118- अहंकार के अभाव में परमात्मा ही शेष रहता है ।

119- मन के अभाव में आत्मा ही शेष रहता है ।

120- निरन्तर सत्य परमात्मा में रहना, प्रेम में रहना आनन्द में होना ही मानव का परम पुरूषार्थ है।

121- दूसरों के अनिष्ट चिन्तन से, पर धन की इच्छा से, देह में ममता से, सुखोपयोग की तृष्णा से, अशान्ति साथ ही चलती रहेगी ।

122– अधिक भाषण से, अधिक श्रम से, अधिक भोजन से सांसारिक बन्धनों से, दुष्टों के संग से लोभ से साधक को सावधान रहना चाहिए ।

123– सन्त स्वभाव पुष्टि के लिए–

(1) दीनो पतितों दुखियों के प्रति करूणा। (2) सत असत का विवेक। (3) संग्रह में ममता का त्याग। (4) संशय विक्षेप का विरोध। (5) पापाचरण दुराचार से विमुखता। (6) शुभ कर्मो में तत्परता। (7) शास्त्र एवं गुरू वाक्यों में श्रद्धा से सन्तत्व पूर्ण होता है।

124– अविचल आस्था, अटूट श्रद्धा, दृढ़ विश्वास और प्रभु के प्रति आत्मीयता से भजन पूर्ण होता है ।

125– जो कुछ नहीं चाहता उसकी स्वतन्त्रता

अनन्त हो जाती है ।

126- साधना में दैवी प्रकृति का आश्रय लो । दम्भ न करो । गर्व रहित होकर शुभ कर्म करो । घमण्ड न आने दो । क्रोध से बचते रहो । चन्चल न बनो । अभय रहो। निष्ठुर न बनो। सद्ज्ञान का आश्रय न छोड़ो । निरभिमानी होकर व्यवहार करो । तभी महात्मा पद प्राप्त हो जायगा ।

127- अज्ञान के लक्षण-

(1) हिन्सा (2) क्रूरता (3) अभिमान घमण्ड (4) दम्भ (5) अशान्ति (6) क्षमा न कर सकना (7) कुटिलता (8) गुरूदोह (9) अपवित्रता मलिनता (10) चन्चलता (11) असंयम (12) भोगों में आसक्ति (13) अहंकार (14) परिवार में ममता (15) दोषों को न देख पाना (16) अनुकूलता

प्रतिकूलता में विषमता (17) आस्था दृढ़ न होना (18) एकान्त से अरुचि (19) तत्व ज्ञान न होना (20) देहासक्ति–किसी गृहस्थ में, किसी सन्यासी तपस्वी में जहाँ कही यह कुलक्षण हों वहाँ अज्ञान ही समझना चाहिए ।

128– जो प्रत्येक के भीतर है वही सच्चिदानन्द हैं ।

129– अहमेको न में कश्चिन्नाह मानस्य कस्यचित्

नहं पश्यामि यस्याह तं न पश्यामि योयम ।

मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं किसी दूसरे का नहीं हूँ, मैं ऐसा कोई नहीं देखता जिसका मैं हूँ, कोई नहीं जो मेरा है ।

130– हमें समझाया गया है कि निश्चय

समझ लो कि जो कुछ भी जगत में मिला है वह अपना नहीं है, अपने लिये नहीं है और किसी वस्तु व्यक्ति पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है। हम सदा किसी के साथ रह नहीं सकते सदा अपने साथ कुछ भी रख नहीं सकते। जो कुछ भी अपना प्रतीत होता है वह या तो हमें छोड़ देगा या छूट जायगा या छिन ही जायगा ।

131– शान्ति तथा नित्य चेतन हमारा वास्तविक स्वरूप है उसकी अनुभूति के लिये हमें संकल्प शून्य, विचार शून्य विकार रहित होना ही चाहिये ।

132– जो तुममें अप्रगट है वही शिक्षा और दीक्षा से प्रगट होता है ।

133– मनुष्य शुभ और अशुभ, जड़ और चेतन, विष और अमृत के मध्य में है ।

134– शिक्षा और दीक्षा से ही पशुता मानवता में और मानवता दिव्यता में परिणत होती है। सदशिक्षा और दीक्षा के बिना मननशील मानव विषयों का तथा जड़ देह का बोझा ही ढोता रहता है ।

135– निर्विचार की दृढ़ता तथा पूर्ण मौन में विशिष्ट ज्योति प्रगट होती है, वही अध्यात्म प्रसाद है । उसे ही ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते हैं ।

136– आत्मा से ही सभी संकल्प, सभी इच्छायें, सभी सुख पूर्ण होते हैं, स्थिर बुद्धि द्वारा ही आत्मानुभव होता है । आत्मा के योग से ही, आत्मोपासना से ही काम क्रोध लोभादि की निवृत्ति होती है ।

137– जब तक मनुष्य आत्मा को नहीं जानता, प्रभु का आश्रय नहीं लेता तब तक उसका पशु ही उसे नष्ट भ्रष्ट करता है । ऐसी

स्थिति में दैवी वृत्तियों द्वारा अथवा धर्म सदाचार द्वारा ही कल्याण हो सकता है ।

138- कम बुद्धि वालों को तुच्छ मान कर घृणा न करो उनकी योग्यतानुसार सत्मार्ग की प्रेरणा दो ।

139- अपने विचार से, आचरण से, भाषण से, दूसरों को सुख देना, दुखः न पहुंचाना यही अहिन्सा है । लालच भय ईर्ष्या के माध्यम से विनाशकारी समाज का निर्माण हुआ है, तुम्हारे भीतर यह विकार नहीं रहना चाहिये ।

140- दृढ़ व्रती बनो ।

(1) क्षमा (2) दया (3) सत्य का ही चिन्तन (4) दान (5) पवित्रता (6) देव पूजा (7) इन्द्रिय संयम (8) अग्नि होत्र (9) सन्तोष (10) सभी प्रकार की चोरी

का त्याग–व्रत की पूर्णता में सहायक है ।

141– जो मनुष्य धार्मिक शिक्षा के साथ धार्मिक साधना स्वीकार नहीं करता उसमें मानवता नहीं जाग पाती ।

142– धार्मिक शिक्षा से कोरा थोथा पाण्डित्य बढ़ता है धार्मिक साधना से सेवा तथा त्याग और प्रेम पूर्ण होता है ।

143– आत्मा परमात्मा में मन को लगाना तथा बुद्धि को स्थिर करना स्वधर्म है केवल मन्दिर में जाना मात्र धर्म नहीं है ।

144– अश्रद्धा से अपमानपूर्वक, दिखावे के लिये दान करना व्यर्थ है ।

145– पाखण्डी से प्राप्त, झूठ बोल कर दम्भ से चोरी से प्राप्त धन का दान व्यर्थ है ।

146– शूद्र प्रकृति वाले को, पतित ब्राम्हण को, वेश्यागामी को, वेद विहीन को, वेद बेचने वाले

को, याचक को, संस्कार हीन को सन्यास छोड़ने वाले गृही को, ज्योतिषी को, ससुराल में रहने वाले को, उतपातकी को, राजसेवक को, स्त्री के वश में रहने वाले को मूद्र की स्त्री से सम्बन्धित को अस्त्र–शस्त्र के व्यापारी को, नौकर को, पुरोहित को, सांप पकड़ने वाले को, वैद्य को, वैश्य व्यापारी को शूद्र के साथी को, उपदेश देने की योग्यता से रहित को दान देने से राक्षस पिशाच लूट लेते हैं ।

147– दान देकर स्वयं उसका वर्णन करना, रोष पूर्वक देना, देकर पश्चाताप करना–दान को व्यर्थ बना देना है ।

148– कोई लोभवश दान देता है, कोई कामना पूर्ति करने वाले को दान देता है, कोई लज्जा वश दान देता है, कोई किसी पर प्रसन्न होकर दान देता है, कोई भय वश दान देता है, कोई अपना धर्म समझ कर दान देता

है, सर्वश्रेष्ठ वही है जो प्रेम में तृप्त रहकर सर्वस्व का दान देता है पर अपने को दानी नहीं मानता ।

149- नित्य जीवन ही आत्मा है। वही निरन्तर है। ज्ञान स्वरूप आत्मा को उसी प्रकार देखो जिस प्रकार भिन्न भिन्न आभूषणों में स्वर्ण देखा जाता है ।

150- आत्मा से ही अहं भाव तथा सभी प्रकार की वृत्तियों एवं संस्कार प्रकाशित होते है ।

151- विचारों के मूल में जो नित्य विद्यमान है वही आत्मा है ऐसा कोई क्षण नहीं जब आत्मा न हो ।

152- आत्मा ही परमगुरू है और जब मन ही शिष्य होता है तब ज्ञान में मुक्ति मिलती है। जब तक आत्मा गुरू नहीं होता तब तक

मन ही गुरू बना रहता है और अहंकार शिष्य होता है।

153- मन को वश में रखने के लिये या तो मन को देखते रहो या फिर किसी वस्तु में ध्यान करो । मन को भगवान की विभूति जान कर मन का दर्शन करते रहो मन को भोग का साधन न बनाओ ।

154- मन स्वरूपतः शुद्ध ही है, विषयों के संग से मन दूषित दीखता है ।

155- आत्मा ही सत है चेतन है, उसका संग ही सत्संग है । यह जगत आत्मा का विराट रूप है । आत्मा ही ''मैं'' का मूल श्रोत है ।

156- दुर्लभ पद की प्राप्ति-

बहुत सम्पत्तिवान होने पर भी नियमों का पालन करना ।

शक्ति होते हुए भी अपमान सहन करना ।

युवावस्था में व्रतों को निभाना ।

निर्धन होने पर भी दान करना । सब के लिये सुलभ नहीं ।

157– सेवा श्रद्धा, दान, सम्मान, आज्ञा पालन में तत्परता से भक्ति की साधना पूर्ण होती है।

158– क्रोध द्वेष कपट स्वार्थपरता, अभिमान, तृष्णा लोभ, निन्दा का भय आदि दोषों के रहते कठोर तप से भी भक्ति मुक्ति नहीं मिलती ।

159– दोष देख मत क्रोध कर मन से शंका खोय ।

प्रेम युक्त सेवा लगन से सब वश में होय ।।

160– आठ काल दूत– (1) असंयम (2) आवेश (3) ईर्ष्या (4) लोभ (5) तृष्णा (6) निष्ठुरता (7) अशिष्टता (8) आलस्य ।

161- जीवन को व्यर्थ करने वाले दोष - (1) कामासक्त (2) कृपण (3) विमूढ़ (4) अति दरिद्र (5) निन्दित (6) अतिवृद्ध (7) रोगी (8) क्रोधी स्वभाव (9) मूर्ख (10) नास्तिक (11) अश्रद्धालु (12) पेटू (13) पाप परायण (14) निन्दक । यह दोष जिसमें रहते हैं वह जीवित रहते मुर्दा के समान है ।

हमें यह भी बात बताया गया है

162- मन की इच्छा पूर्ति में भोग है ।

163- दूसरे के मन की समुचित पूर्ति सेवा है ।

164- मन भगवान में लगाये रहना, उन्हें अपने साथ अपने में ही मानना जानना भक्ति है ।

165- मन का तल्लीन हो जाना मुक्ति है ।

166- मन की प्रतिकूलता में शान्त रहना तप

है ।

167- मन से अपना कुछ न मानना और अपूर्ति में प्रसन्न रहना त्याग है ।

168- मन को निरन्तर देखते रहना ध्यान है, जिस प्रभु का न संयोग होता है न वियोग होता है उसी से नित्य योग है ।

169- जिसकी उत्पत्ति नहीं होती जिसका विनाश नहीं होता जिससे कभी दूरी नहीं होती वही नित्य प्राप्त परमात्मा है ।

170- गुरू सेवा सब को नमन हरि सुमिरन वैराय ।

ये चारो जब आ मिले समझो पूरन भाग ।।

171- प्रीति राम सो नीति पथ चलिय राग रस जीति ।

तुलसी सन्तन के मते यहै भगति की रीति

।।

172- विद्या हो पर आत्म ज्ञान न हो तो अहंकार ही पुष्ट होगा ।

173- अज्ञानी अन्धकार में है पर अहंकार भरा ज्ञानी घोर अन्धकार में है ।

यह परमगुरू भगवान के वाक्य हैं-

174- द्वयक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्र्यिंक्षरं ब्रम्हश्मश्वतं ।

ममेतिच भवेन्तृत्युर्न ममेति चशाश्वत ।।

''मम'' भाव मृत्यु पथ हैं, ''नमम'' शाश्वत पद का पथ है ।

अपने से भिन्न जो वस्तु मिली है उसे अपनी न मान कर दाता प्रभु की जानकर ''मेरा'' के विपरीत-ऐसा दृढ़ निश्चय कर लो कि कुछ भी मेरा नहीं है ।

175- जहां तक अज्ञान है वहां तक अहंकार

है ।

176- जहां अहंकार नहीं है वहीं ज्ञान है ।

177- जहां मन शान्त शून्य है वहीं आत्मा है ।

178- जहां अहंकार अनुपस्थित है वहीं परमात्मा की उपस्थिति का बोध होता है ।

179- अज्ञान ही अहंकार का स्वभाव है ।

180- ज्ञान परमात्मा का स्वभाव है ।

181- अज्ञान में अहंकार कर्ता बनता है और कर्ता ही बन्धन से पीड़ित दुःखित सन्तापित होता है ।

182- पांचतत्व, मन, बुद्धि, अहंकार, यही अपरा प्रकृति है । जीव ही परा प्रकृति है । सब मिलाकर नौ प्रकार की देह, परमात्मा की देह है ।

183- गुरू वाक्यों से ही हमें ज्ञात हो सका

कि–

जो नित्य निरन्तर है वही परमात्मा हैं, वही परमेश्वर है।

जो स्वयं की आत्यन्तिक सत्ता है, चेतना है वही परमात्मा है ।

184– हृदय की शान्ति, मन का मौन बुद्धि की स्थिरता ही परमात्मा की अनुभूति का द्वार है, और सिद्धि परम सिद्धि की साधना है।

185– जब तक चित्त शान्त नहीं होता, शून्य नहीं होता, जड़ता रहित नहीं होता और निर्विकार नहीं होता तब तक दर्शन का द्वार बन्द ही रहता है ।

186– जहाँ कोई प्रयत्न नहीं है, कोई भीतर शब्द नहीं उठते मनन चिन्तन नहीं होता, तब जो शेष है वही आत्मा है। जहाँ ‘‘मैं’’ नहीं है वहीं परमात्मा है आत्मा के आगे ‘‘मैं’’ है।

“मैं” के पीछे परमात्मा है ।

187- जब कर्ता अहंकार कुछ नहीं करता है तब उसका बोध होता है जो अहंकार का जीवन है ।

हमें इन गुरू वाक्यों से जीवन की गति का ज्ञान होता है-

188- स्वयं से संसार की ओर सुख की दिशा है ।

संसार से स्वयं की ओर आनन्द की दिशा है ।

189- स्वयं के निकट सत्य परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है ।

190- परमात्मा ही तो जीवात्मा का स्वरूप है- तब उसका दर्शन किस प्रकार हो सकता है ? मनस्तत्व से जो कल्पना को आकार मिलता है वह सत्य का दर्शन नहीं है ।

191– ज्ञान की पूर्ण शुद्धावस्था का नाम ही आत्म ज्ञान है। जहां विषय विकार नहीं है, कोई संकल्प विकल्प नहीं है वहां पर केवल चेतना की अनुभूति ही साक्षात्कार है ।

192– खोज बन्द करते हो जो शेष है वही आत्मा है ।

"मैं" जिसे खो नहीं सकता वही स्वरूप है, वही सनातन सत्य परमात्मा है ।

हमें सावधान किया गया है कि–

193– पापी से पानी मनुष्य भी यदि ज्ञान में प्रमाद न करे तब उसके पाप नष्ट हो जायेगे । स्त्री शूद्र वैश्य चाण्डाल कोई भी हो सभी ज्ञान से उन्नति और प्रेम से सदगति होती है ।

194– क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है । अज्ञान से ज्ञान ढक जाने पर मोह होता है

।

१९५- स्वयं के आत्यान्तिक सत्य की जिसने नहीं जाना वह दरिद्र है ।

हमें यह भी समझाया गया है

१९६- दरिद्र वही है जो धन से सम्मान से भोग से अधिकार से अतृप्त रहकर सदा भागता ही रहता है ।

१९७- जन्म से ही संसार की ओर गति होती है ।

१९८- जन्म के प्रथम और मृत्यु के अन्त में रहने वाले जीवन को जानते ही परमात्मा में विश्राम मिलता है ।

१९९- जन्म होते ही मृत्यु का संग और संयोग होते ही वियोग की यात्रा आरम्भ हो जाती है।

२००- अभी अभी देखो ! अहंकार पशुता से

घिरा है और जीवात्मा, परमात्मा से सम्बन्धित है।

201– सृष्टि में अनेकता उस एक अनन्त की विभूति है ।

202– ममता रहित होने पर वस्तु व्यक्ति का यथार्थ ज्ञान और अनन्त के प्रति प्रेम पूर्ण होता है ।

203– किसी प्रकार की चाह अथवा कामना प्रेम की ओर नहीं लौटने देती ।

204– जिसके संग से इच्छायें बढ़ती हैं वही जगत है ।

205– जिसके संग से इच्छाओं का अन्त होता है वह जगत गुरू है ।

206– सृष्टि की क्षति को पूर्ण करना तथा वस्तु को सूक्ष्म तत्व में परिणत करने की विधि यज्ञ है ।

207– समाज से जो लिया है उसे वापस करना दान है ।

208– शरीर एवं मन की शुद्धि के लिए– (1) देवता, ब्राम्हण, गुरू, ज्ञान से सम्पन्न को सन्तुष्ट करने में (2) देह एवं मन को पवित्र रखने में (3) सरलता नमनशीलता में (4) ब्रम्हचर्य पालन में (5) अहिन्सा ब्रत को सुरक्षित रखने में (6) प्रिय तथा हितकर एवं यथार्थ वचन बोलने में (7) स्वाध्याय तथा साधनाभ्यास में (8) मन को सदा प्रसन्न रखने में और एकाग्रता में (9) शान्त और मौन रहने में (10) अन्तःकरण की पवित्रता में (11) इन्द्रियों को स्ववश रखने में, कष्टों को सहते रहना ही तप है ।

209– त्याग में प्रेम की पूर्णता – (1) निषिद्धकर्मो का त्याग (2) काम्य कर्मो का त्याग (3) तृष्णा का त्याग (4) दूसरों से सेवा

लेने का त्याग (5) कर्तव्य कर्म में आलस्य का त्याग (6) फल की आशा का त्याग (7) अहंकार का त्याग, होने पर प्रेम पूर्ण होता है ।

210- बुद्धि के आगे जो कुछ है उससे ममता होना ही विनाशी का संग है । बुद्धि के पीछे जो सतचित तत्व है उसी को अपना मानना अविनाशी से प्रेम की साधना है ।

211- सेवक वही हो सकता है जिसमें ममता न हो ।

212- प्रेमानुरागी वही हो सकता है जिसमें अहंता न हो ।

213- सदाचारी वही हो सकता है जिसमें विषमाशक्ति न हो ।

214- संयमी वही हो सकता है जिसमें विषमता न हो ।

215- मौन तभी पूर्ण हो सकता है जब प्रतिक्रिया शून्य सजगता हो ।

216- साक्षी होकर होते हुए को देखना सजगता है ।

217- सजग रहकर देखना ही साक्षित्व है ।

218- जब जानने को कुछ शेष न रहे तभी समाधि है ।

219- जब चेतना में अन्य की स्मृति न हो तभी स्वयं को बोध होता है ।

220- अहंकार के साथ ही संसार है जब अहंकार नहीं रहता तभी मोक्ष है ।

221- जहां से विचारों का आरम्भ होता है जिसमें विचारों का प्रवाह चलता है जो विचारों के बीच में ही विद्यमान है जो विचारों के अन्त में शेष है वही तो सनातन सत् परमाश्रय है ।

222- जो ''मैं'' हृदय में प्रतिष्ठित है उस

‘‘मैं’’ के अहं के भीतर प्रभु को प्रतिष्ठित देखना दर्शन है ।

223– मांगने वाले भिखारी कभी धनी नहीं हो पाते । देने वाले अवश्य राजाधिराज स्वामी हो जाते हैं, जबकि वे देकर के कुछ भी नहीं चाहते ।

224– सभ्य मनुष्य में प्रीति मधुरता उदारता क्षमा नम्रता सरलता ऊपर रहती है किन्तु द्वेष घृणा लोभ काम भीतर रहता है, वही संग से प्रकट होता है ।

225– अहंकार के रहते आनन्द आलोक आत्मा की उपलब्धि नहीं हो पाती । अहंकार के रहते दुःख, पीड़ा, सन्ताप, पाप का अन्त नहीं होता । जहां अहंकार है वहीं अधर्म है ।

226– हर्ष, शोक, राग द्वेष, भय, क्रोध के नहीं रहने पर बुद्धि स्थिर होती है ।

227– चाह मिटने पर, किसी वस्तु व्यक्ति का प्रभाव न पड़ने पर, जितना कुछ प्राप्त है उसी में प्रसन्न रहने पर सन्तोष की पूर्णता समझनी चाहिए ।

228– धन के रहते पांच शत्रु से सावधान रहो ।

(1) राजा (2) चोर (3) उत्तराधिकारी (4) भाई (5) क्षय ।

229– प्रभु सुमिरन वही पूर्ण है जिससे ''मैं'' मिट जाये और भजन वही पूर्ण है जिससे ''मेरा'' पन की प्रतीति मिट जाये ।

230– मानव की मांग–

अखण्ड स्वस्थता, अखण्ड शक्ति, अखण्ड आनन्द, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड प्रेम ।

231– शक्ति की, सत्ता की, तत्व की, कोई मूर्ति नहीं होती ।

232- चेतना का कोई आकार नहीं होता ।

233- अनन्त की, सर्व की, कोई सीमा नहीं होती ।

234- धर्म, केवल सत्य है और स्वयं में ही है ।

235- सर्व को धारण करने वाली शुद्ध सत्ता धर्म है ।

236- निष्कामता स्वधर्म है । सत्य में विश्राम पाना स्वधर्म है ।

237- व्यक्तित्व से स्वरूप तक अथवा पशु से परमात्मा तक का पथ धर्म पथ है ।

238- निर्विचार तथा निर्विकल्प एवं शून्य होना ही धर्म में प्रवेश है ।

239- रागी क्रोधी कामी भयातुर धर्म से विमुख रहता है ।

240- धर्म की पूर्णता में ही पूर्ण विरक्ति होती

है ।

241- वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते है ।

242- जिज्ञासु को प्रथम उसे जानना चाहिए जिसे अज्ञानी पकड़े हुये है, जो धर्म नहीं है।

243- धर्म शाश्वत है, वह मिट नहीं सकता ।

244- धर्म आवृत हो सकता है (ढक सकता है) पर मिट नहीं सकता । धर्म के प्रति मनुष्य सो सकता है, धर्म खो नहीं सकता ।

245- बलों के सदुपयोग से मानव धर्मात्मा होता है ।

246- स्वाध्याय, ब्रम्हचर्य, दम, यज्ञकर्म, सरलता, क्षमा, पवित्रता, जितेन्द्रियता, श्रद्धा, देव पूजा, मानव धर्म है ।

247- धार्मिक होना साधना है । धार्मिक दिखना सजावट है ।

248- परम गुरू भगवान कहते है :- जो

तत्व ज्ञान रूप धर्म में श्रद्धा नहीं रखता वह सत्य को न पाकर मृत्यु में संसार चक्र में भ्रमण करता है । (गीता 913)

249- सीमित अहंभाव के रहते भेद नहीं मिटेगा । सीमित प्यार के रहते संघर्ष नहीं मिटेगा ।

250- निरभिमानी, निर्लोभी, निष्काम, ममता रहित परिश्रमी, प्रीतियुक्त विवेकी ही सेवा को पूर्ण कर पाता है ।

251- जितना छोड़ोगे उतनी ही मुक्ति । जितना पकड़ोगे उतना ही बन्धन ।

252- किसी वस्तु व्यक्ति से प्रभावित तथा कहीं आकर्षित न होना संयम है ।

253- जाग्रत में जगत दिखता है । निद्रा में स्वप्न दिखते हैं । समाधि में स्वयं का बोध होता है ।

254- जब दृष्य नहीं रहता तब दृष्टा निवारण होता है ।

255- परिपूर्ण चैतन्य का अनुभव, समाधि है ।

256- ज्ञान में ‘‘मैं’’ का मिट जाना ही समाधि है ।

257- स्वाधार चैतन्य में होना समाधि है ।

258- आत्मलय ही समाधि है ।

259- जो समता में है वही त्यागी है । राग, द्वेष में विषमता है ।

260- क्रिया के द्वारा जो भान होता है वह ज्ञान है ।

261- ज्ञान के प्रभाव का रसास्वाद आनन्द है ।

262- चेतना का सतत बोध होना आनन्द है ।

263– ‘‘मैं हूँ’’ की अखन्ड धारा आनन्द है ।

264– रमन्ते सर्व भूतेषु स्थावरेषु चरेषुच; अन्तरात्ममा स्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ।

जो सब जीवों में चल अचल में अन्तर्यामी रूप में ब्याप्त है उसको राम कहते हैं । (वही आनन्दमय है) ।

265– स्वयं की सत्ता के ऊपर कुछ भी नहीं है ।

266– विनाशी के संग से विकारों तथा कामनाओं की उत्पत्ति होती है ।

267– जहां मन शान्त है वहीं मन की जड़ है । स्वयं को पा लेना सत्य का पा जाना है ।

268– जो मृत्यु से घिरा है उसे जो कुछ प्राप्त होगा उसे मृत्यु व्यर्थ कर देगी, अतः उस प्राप्ति का कोई अर्थ नहीं ।

269– मनुष्य के दैवी अंश को त्याग में दान

में आनन्द आता है । आसुरी अंश को संग्रह में सुख प्रतीत होता है ।

270– जिस प्रारब्ध के बन्धन में आज तुम विवश हो कल उसके स्वामी थे और कल जो प्रारब्ध तुम्हारे ऊपर शासन करेगा उसके आज तुम्ही स्वामी हो । इसलिये वर्तमान में कर्म करते हुए सावधान रहो ।

271– जो नर नारी चाह रहित हों जाते हैं उन्हें कोई खरीद नहीं सकता । रूप एवम् धन और सुख की चाह में तन मन बिक जाता है ।

272– जिसका कभी वियोग ना होता उसे जानो ।

273– जो कुछ मिला है उस तन धन आदि में ममता न करो । जो नहीं मिला है उसकी कामना न करो । सर्तमान में जो कुछ है

उसका सदुपयोग करो ।

274- ज्ञान में जो रख लिया है उसे देखो । जिसमें प्रेम रख दिया है उसे समझो । चेतना को जिससे जकड़ दिया है उसे जानो ।

275- परम गुरू भगवान के इन वाक्यों में देखो-

जो दुराचारी है नीच है मूढ़मति है, मोह ग्रसित है, भ्रमित है, आसुरी वृत्तियों वाला है वह ईश्वर भक्त नहीं हो पाता वह अपने भोगों में बृद्धि करके अन्त में दुख भोग से शान्ति के लिये यत्न करता है ।

अनुष्ठान की पूर्ति के लिये-

276- इन्द्रियों को संयम में रक्खो । राग द्वेष से बचो ।

277- द्वन्दों में सम बुद्धि रखो । प्रत्येक कर्म कुशलता पूर्वक पूर्ण करो । कर्म फल का

परमार्थ के लिये दान करो ।

278- सर्वत्र सब में निर्दोष ब्रम्ह को देखो ।

279- द्वन्दों में समस्थित रहे बिना उन्नति सद्गति नहीं होती ।

280- किसी की प्राप्ति और किसी की रक्षा की चिन्ता छोड़कर कर्तब्य का पालन करो।

281- जो सत्यानुरागी है, तपस्वी है, दयालु है, शीलवान है, सन्तोषी है, ज्ञान से कर्तब्य परायण है, अहंता ममता कामना आसक्ति का त्यागी सन्यासी है, जो विद्वान है, शरणागत का रक्षक है, अभय दानी है जो हर दशा में समस्थित शीतल है जो माता पिता का पूर्ण सेवक है वेद वेत्ता है जो ज्ञान प्रकाश गुरू है जो निरन्तर आत्मा है- यह सभी तीर्थ स्वरूप हैं । इन तीर्थों के सेवन से और यज्ञ दान सेवा तथा प्रेम की पूर्णता से मनुष्य पावन हो

जाता है ।

282- दोषों का न रहना ही पवित्र होना है ।

283- सदगुणों द्वारा श्रद्धा प्रेम द्वारा पूजा पूर्ण होती है ।

284- धन के बल पर पूजा सामग्री से निर्धन अपमानित होते हैं । निर्धन अपनी भक्ति का भव्य प्रदर्शन नहीं कर सकते हैं ।

285- हृदय में प्रतिष्ठित प्रभु की सुकर्मों के फलों से पूजा करो । फूलों हारों फलों से बाह्य पूजा होती है उससे देहाभिमान अथवा अहंकार को ही तृप्ति मिलती है ।

286- श्रद्धा एवं प्रेम भरे हृदय के पवित्र सद्भावों सद्विचारों के सुमन अर्पण करो यह तुम्हारी प्रभु प्रदत्त अपनी सामग्री है ।

287- भक्ति भावना के बदले में शक्ति लेकर जाओ ज्ञान विज्ञान एवम् भक्ति की प्यास

बढ़ाओ ।

288- स्थूल शरीर से सेवा करो, सूक्ष्म शरीर से परमात्मा का चिन्तन करो, कारण शरीर से सत्य में ही स्थिति प्राप्त कर लो । मन को परमात्मा में लगाओ । बुद्धि को संसार में लगाओ।

289- ऐहिक चमत्कारों की चर्चा में समय नष्ट न करो । प्रेम ईश्वर की ही किरण है तुम प्रेम के कर्ता न बनकर सब में स्वयं में ईश्वरीय चेतना को देखने का अभ्यास बढ़ाओ और स्वयं प्रेम में तन्मय रहो ।

290- आस्था विश्वास उत्साह धैर्य साहस प्रयत्न के द्वारा सिद्धि सुलभ होती है ।

291- किसी वस्तु को अपना मानने से लोभ बढ़ता है और समाज में दरिद्रता बढ़ती है, संघर्ष चलता है । संसार में जिसे अपना

मानते हो उसका विनाश होगा ही । जिसके साथ मिल कर मैं कहते हो उसका ह्रास होगा ही ।

292- स्वयं का मिटना ही शून्य होना है । अहंकार शून्य होने पर प्रेम के पूर्ण होने पर स्वयं और प्रभू के बीच की दूरी मिट जाती है ।

मैं परमात्मा ही गुरू हूँ मन ही शिष्य है ।

293- जहां तक अपने को देह मानते हो वहां तक मूर्ति में भगवान की आराधना करो यही विनाशी रूपों की आसक्ति हटाने की साधना है ।

294- स्वयं के व्यक्तित्व को इष्ट में खो देना ही पूजा है ।

295- देह भाव का नाश होना ही आत्म समर्पण है ।

296– देह के प्रति आत्मीयता ही पूर्ण बन्धन है ।

297– केवल आत्मा चेतना सत्य चेतना ही प्रत्यक्ष ज्ञान है ।

298– गुरू के बताये हुए शाश्वत निरन्तर प्राप्त परमात्मा में स्थिर रहो– यही गुरू दक्षिणा है।

299– भगवान ने कहा है । ‘‘अहं गुरो महावाहो मनः शिष्यं च विद्धि मे’’ । मैं ही आत्मा स्वरूप से परम गुरू हूँ और मन ही शिष्य है । जो मन को ही गुरू मानता है वह आत्मा को गुरू नहीं जान पाता ।

300– चन्चल चित ही मन है स्थिर चित ही आत्मा है ।

301– मैं भाव के श्रोत में पहुँचते ही मैं नहीं रहता, आत्मा ही शेष रहता है ... ध्यान योगी

के लिये ।

302– कोहं पूरक है, सोहं कुम्भक है, नाहुँ रेचक है । तुम सदैव आत्मा में हो– यही अनुभव करो । भीतर प्रश्न करो भीतर ही उत्तर लो ।

303– हृदय परमात्मा का आसन है ।

304– परमात्मा रूपी सिन्धु में जो लहर है वही प्रकृति है । लहर में जो बिन्दु है वही जीवात्मा है । जीवात्मा रूपी बिन्दु को नाम रूप छोड़कर सिन्धु में विलीन होना ही मुक्ति भक्ति की पूर्णता है ।

305– कर्म भक्ति ज्ञान– पूर्ण योग के तीन द्वार हैं ।

306– ज्ञान में हर वस्तु परमात्म तत्व रूप ही दिखती है ।

307– भक्ति में सब कुछ भगवान की लीला

दिखती है ।

308– कर्मयोगी को सभी वस्तु भगवान की सेवा सामग्री दिखती है ।

309– 'मैं' ही अहंभाव का मूल श्रोत है ।

310– सच्चिदानन्द आत्मा की विमुखता में ही समस्त क्लेश है ।

311– जो विनाशी अनित्य के असत के सम्मुख है वही सत से विमुख होता है ।

312– सत परमात्मा से विमुख ही भयातुर चिंतित रहता है ।

313– मृत्यु से भयातुर न बनो । मृत्यु केवल सम्बन्ध विच्छेद है ।

किसी वस्तु की समाप्ति है, समाप्ति में ही पुनः नवीनता है ।

314– संहार नवसृजन के लिये होता है और सृजन का अन्त संहार में होता है जो सृजन

को और संहार को देखता है उसका न सृजन है न संहार है, उसका तो निर्माण होता है मृक्ति होती है और निर्वाण होता है ।

315- हमारे ज्ञान से सत्य सदैव अनन्त ही रहेगा क्योंकि जितना हम जानते हैं उससे बहुत अधिक जानने को शेष है ।

316- परमात्मा प्रतिक्षण तुम्हारे चारो ओर विद्यमान है तुम्हारी प्रत्येक स्वांस उसी से चल रही है । तुम्हारा प्रत्येक अंग उसी का है ।

317- सभी के आदि में मध्य में अन्त में परमात्मा ही है ।

318- जिसकी बुद्धि मूर्छित है वह मूर्ख है ।

319- जिसका मन तन धन भोग में अटका है वही मूढ़ है ।

320- जिससे अहंकार बढ़ता है वह मिथ्या ज्ञान है ।

321– ज्ञानियों के नित्य वैरी काम से ही ज्ञान ढका हुआ है ।

322– ममता अहंकार कामनाओं का त्याग हुए बिना अशान्ति का अन्त होता ही नहीं ।

323– जो नित्य तृप्त है वही जितेन्द्रिय है ।

324– निरासक्त होकर ही आप आत्म सुख को प्राप्त कर सकोगे ।

325– नान्यांगुणेभ्यः कर्तारं यदा दृष्टानुपश्यति । (गीता)

जिस काल में दृष्टा तीनों के अतिरिक्त किसी को कर्ता नहीं देखता वही परमात्मा को तत्वः जानता है ।

326– दृश्य से सम्बन्ध विच्छेद होने पर अपने द्वारा ही अपना परिचय होता है ।

327– आसक्तियों के मिटने पर प्रभु में प्रीति पूर्ण होती है ।

328- ममता ही आसक्ति उत्पन्न करती है ।

329- जो विनाशी में अविनाशी को देखता है वही यथार्थ दर्शी है ।

330- समदर्शी ही सर्व के प्रति प्रेम रखते हुए हिन्सा से बचता है ।

331- सन्त्यज्य हृद गुहेशानं देव मन्यम् प्रयान्तिये ।

ते रत्नमभि वाञछति त्यक्त हस्तस्थ कौस्तुभं ।।

जो मनुष्य हृदय रूपी गुहा में विराजमान ईश को छोड़कर दूसरे देवता को खोजते हैं वे मानों मुट्ठी में पकड़ी हुई मणि को त्याग कर कांच के टुकड़े को इधर उधर ढूढ़ते हैं।

<u>उपदेश के कुपात्र</u>

332- जो श्रद्धा न रखता हो, जो ईर्ष्या द्वेष क्रोध से भरा हो, जो अभिमानी हो जो दूसरों

की निन्दा करता हो, सदा भोगों में ही आसक्त हो, जो विद्याहीन हो, शास्त्रविरूद्ध कर्म करता हो, निर्दय कठोर हो, दूसरों के अहित में तत्पर हो, मूर्ख हो विवादी हो, दुर्व्यसनी, सदा चन्चल मन वाला हो, ऐसे व्यक्ति को सदुपदेश देना पत्थर में कीला गाड़ने के समान व्यर्थ श्रम करना है ।

३३३- जब कभी आप अशान्त होते हैं घृणा सन्ताप से भरे होते हैं तब अपना अहित तो करते ही हैं दूसरों के लिये आपका दर्शन मंगलमय नहीं होता ।

३३४- आप स्वयं शान्ति प्रेम आनन्द से भरे रहें तभी सबके लिये मंगलमय हैं सर्व हितैषी हो सकते हैं ।

३३५- अहंकारी साधक किसी प्रकार की सिद्धि पाकर प्रसिद्धि पाकर प्रभावी बन जाता है ।

336- मन को ईश्वर की एक विभूति समझकर उसका दर्शन करते रहो मन को अपना मानकर ।

337- मन के ऊपर बुद्धि को देखो, बुद्धि के ऊपर आत्मा को जानो ।

338- मन में जो है उसे देखते रहो द्वेष प्रीति न करो, दृष्टा बनो ।

339- जो कुछ पढ़ सुन के जाना है उसका अभिमान छोड़ दो तभी यथार्थ ज्ञान में दर्शन होगा।

340- दमन न करो । देखते रहो स्वतः कैसे हो रहा है ।

341- काम क्रोध मोह को एकान्त में ध्यान से देखो । करो कुछ नहीं ।

342- कर्म से ईश्वर का निरन्तर स्मरण धर्म है ।

343- बुद्धि में ईश्वर भर जाये - यही ज्ञान है ।

344- प्रेम में परमात्मा विद्यमान रहे - यही भक्ति है ।

345- सत की प्रधानता धर्म है ।

346- चित की प्रधानता ज्ञान है ।

347- आनन्द की प्रधानता भक्ति है ।

348- इन्द्रियों की विषयाग्नि में जब ईंधन नहीं डाला जाता तभी ठण्डी होती है ।

349- सच्चा भजन वही है जिसमें सेवा त्याग प्रेम और समता की पूर्णता हो जाये । निष्काम सेवा, पूज्य भाव से भजन पूर्ण होता है ।

350- आप अन्धकार नहीं हटाओ, प्रकाश में आ जाओ ।

351- अज्ञान नहीं हटाओ प्रेम से भरे रहो ।

३५२– अहंकार को छोड़ने के लिए चिंतित न रहो, सरलता को प्राप्त करो ।

३५३– लोभ के त्याग के लिए कहीं नहीं जाओ अपितु शान्ति में रहने के लिए सजग सावधान रहो ।

३५४– बुराई से न लड़ते रहो, भलाई करते रहो ।

३५५– हिन्सा रूपी पाप को छोड़ने के लिये कहीं यात्रा न करो प्रत्युत प्रेम की उपासना करो। प्रेम से दूर न होने में ही उपासना है ।

३५६– असत की चिन्ता न करो सत की आराधना करो ।

३५७– क्षुद्र के त्यागी न बनो महान के योगी हो जाओ ।

३५८– प्रेम सीमित हो गया है इसीलिये राग बन गया है, राग असीम हो जाये तो प्रेम हो

सकता है ।

३५९– प्रेम का असीम होना ही परमात्मा में होना है ।

३६०– भेद एवं भिन्नता के होते हुए भी सत्ता अखण्ड है ।

३६१– जड़ वस्तु से सम्बन्धित होने से ही अहंकार में कठोरता है ।

३६२– स्वयं में परमात्मा का बोध होना प्रेम है ।

३६३– स्वयं के द्वारा स्वयं का ज्ञान प्रज्ञा की प्राप्ति है ।

३६४– प्रज्ञा से प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश होता है ।

३६५– जहां अहं अभिमान रहित होता है वहीं प्रेम पूर्ण होता है ।

३६६– अहंकार किसी से प्रेम करता है,

अहंकार विलीन होने पर प्रेम स्वयं में होता है । प्रेम का होना परमात्मा का होना है ।

367- जो वस्तु तथा व्यक्तियों से तृप्ति की आशा छोड़कर ज्ञान विज्ञान से तृप्त है, जो विकार रहित है, इन्द्रिय रहित है, जो मिट्‌टी स्वर्ण को समान जानकर सम शान्त है वही योग युक्त है ।

268- जहाँ तक त्याग करने की चिन्ता है वहाँ तक अज्ञान ही है । जहाँ आनन्द की परमात्मा की उपलब्धि है वहीं ज्ञान है । परमात्मा की अनुभूति के पश्चात् स्वतः त्याग होता है, करना नहीं पड़ता ।

369- भौतिक विज्ञान से शान्ति और सुविधायें प्राप्त होती हैं ।

370- आध्यात्मिक विज्ञान से शान्ति सुलभ होती है ।

371- जो शान्त नहीं है और शक्तिशाली है वही अपने लिये तथा दूसरों के लिये घातक है ।

372- सम्पत्ति, मूढ़ मनुष्य को लोभी मोही अभिमानी बनाती है । धनवान मनुष्य क्रोध लोभ के आवेश में पाप से, भय से, चिन्ता से मुक्त नहीं हो पाता ।

373- धर्मदान की पूर्णता में आसक्ति मिटती है ।

374- चित्त को निश्चल बना लेना धारणा है ।

375- अपने को चिन्मात्र स्वरूप अनुभव करना ध्यान है ।

376- ध्यान का पूर्ण विस्मरण ही समाधि है ।

377- देह इन्द्रियों के वैराग्य दृढ़ रहना यम

है ।

378- परमात्मा में ही अनुराग रखना नियम है ।

379- हीनता पीड़ित ही पदाधिकार चाहते हैं ।

380- दरिद्रता से ग्रसित, धन सम्पदा चाहते हैं ।

381- कुछ करते हुए आप बाहर से सम्बन्धित होते हैं, कुछ न करके आप अन्दर दर्शन के द्वार पर होते हैं ।

382- कुछ क्षण ही कुछ न करने की स्थिति में वही शेष रहता है जो सत्य है ।

383- मन इन्द्रियों के सहारे बाहर जाने का जन्मों से अभ्यास पड़ा हुआ है । पूर्वाभ्यास ही ध्यान में बाधक है ।

384- प्रायः प्रत्येक मनुष्य अपने अहंकार को सन्तुष्ट कर रहा है । साधना में संसार बाधक

नहीं है, सम्बन्ध बाधक है ।

३८५- जो वस्तु व्यक्ति के सम्बन्ध से मुक्त होता है वही आत्मा में सन्तुष्ट होता है ।

३८६- जो आत्मा में ही सन्तुष्ट है, जिसकी प्रीति आत्मा में ही है जो आत्मा में ही तृप्त है उसे कुछ भी करना शेष नहीं है ।

३८७- जब किसी से ममता नहीं होगी तभी प्रभु में आत्मीयता होती है । आत्मा में आत्मीयता दृढ़ होने पर अहिन्सा पूर्ण होती है ।

३८८- परम्परायें, अन्ध विश्वास, रूणियाँ, सम्प्रदाय, मान्यतायें अविवेकी मनुष्य को परतन्त्र बनाये हुए हैं ।

३८९- स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हो तो यह जान लो कि कितनी दृढ़ दासता से जकड़े हुए हो ।

390– ज्ञान के सुलक्षण

(1) अहंकार रहित (2) अभिमान शून्य (3) अहिन्सावृती (4) विनम्र (5) श्रद्धावान (6) गुरू सेवक (7) पवित्र (8) अचन्चल (9) विषय विरक्त (10) अनासक्त (11) समस्थित (12) जन्म मृत्यु बुढ़ापा व्याधि दुःख का दृष्टा (13) विरागी (14) द्वन्द्वों में शान्त (15) प्रपन्चविमुख (16) सबसे असंग (17) देह में ममता रहित (18) सत्यदर्शी

391– इसके विपरीत जो लक्षण हों वह सब अज्ञान में घटित होते हैं ।

392– गृहस्थ के लिए, असतसंग, हिन्सा चोरी, आलस्य प्रमाद कन्जूसी ईर्ष्या द्वेष कलह क्रोधादि पाप है ।

393– योगी के लिए चित्त की चन्चलता

कामना पाप है ।

394– ज्ञानी के लिए, भेद दर्शन लोभ पाप है ।

395– भक्त के लिए, प्रभु की विस्मृति पाप है ।

---000---

श्री परमात्मने नमः

गुरु–वाक्य

(द्वितीय भाग)

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरन्जनम् ।
नाद मिन्दु कलातीतं तस्मै श्री गुरुवै नमः ।।

1– जिन वाक्यों से अज्ञान की निवृत्ति होती है, जिन वाक्यों से संशय, भ्रम, मोह मिटता है, जिन वाक्यों से अशान्ति के मिटने और शान्ति सुलभ होने का उपाय ज्ञात हो जाता

है, जिन वाक्यों से दुर्बलता तथा दुर्गुणों को छोड़ने और सद्गुणों के विकास की साधना आरम्भ हो जाती है, जिन वाक्यों के स्वरूप का एवं सत्य आत्मा का ज्ञान होता है, जिन वाक्यों से लघुता की निवृत्ति और गुरूता की प्राप्ति होती है उन्हीं वाक्यों को गुरू वाक्य कहते है ।

2– जिन वाक्यों से असत् एवं अनित्य वस्तुओं तथा क्षणिक सुखों में आसक्ति बढ़ती है, जिन वाक्यों को ग्रहण करने से मोह, लोभ, अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोधादि विकारों की वृद्धि होती है, जिन वाक्यों के प्रभाव से मनुष्य शान्ति से सत्–परमात्मा से विमुख होकर अनित्य वस्तुओं का रागी बन जाता है उन्हीं वाक्यों को लघु वाक्य, दुष्ट वाक्य, अनर्थकारी वाक्य कहते हैं ।

3– जहाँ तक मनुष्य में पशु का तथा राक्षस

का एवं दानव का अधिकार है वहाँ तक गुरू वाक्यों का प्रभाव नहीं पड़ता ।

4– जहाँ मानव हृदय में दिव्यता की अभिलाषा प्रबल है वहीं पर गुरू वाक्यों के अनुसार जीवन निर्माण का संकल्प दृढ़ होता है ।

यह परमगुरू भगवान के वाक्य हैं –

5– बुद्धियुक्त होकर कर्म बन्धन को नष्ट कर सकते हो । बुद्धियुक्त विवेकी पाप पुण्य दोनों के बन्धन से छूट जाता है ।

6– मोह रहित बुद्धि में ही विराग दृढ़ होता है ।

7– रागी ही विरागी होता है, लेकिन जो वीतराग है उसे कुछ नहीं करना पड़ता ।

8– आसक्त ही विरक्त होता है किन्तु जो अनासक्त है वह जहाँ का तहाँ स्थित रहता है।

9– कामना त्यागे बिना निष्पृहता, निर्ममता नहीं आती, बुद्धि भी स्थिर नहीं होती ।

सदगृहस्थ के लिये गुरु वाक्य

10– विनाशी तथा जड़ देह में रहने वाले अविनाशी चेतन स्वरूप आत्माओ ! अभी तक नहीं जानते हो तो अब जान लो कि जिन वस्तुओं तथा व्यक्तियों को अपनी मानते हो वह तुम्हारी नहीं है और जिस नाम रूप के साथ मिलकर मैं कहते हो वह तुम नहीं हो । जिस घर को तुम अपना घर मानते हो वह तुम्हारा नहीं है, वह तो उस देह के रहने का घर है जिस देह में तुम इस समय निवास कर रहे हो ।

11– इस देह रूपी गृह में आसक्ति, ममता रखने तक तुम गृहस्थ हो ।

12– अज्ञान में तन, धन, परिवार को अपना

मानकर तुम मोही, लोभी, अभिमानी बन रहे हो ज्ञान में अपना न जानकर निर्मोही, निर्लोभी, निरभिमानी रहकर शान्त स्वस्थ हो सकते हो।

13– सेवा सत्कर्म की पूर्णता के लिये दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है क्योंकि दृढ़ संकल्प द्वारा बिखरी शक्ति केन्द्र पर एकत्रित होती है ।

14– परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये बड़े प्रयास की अपेक्षा नहीं है क्योंकि वे समस्त के आत्मा अर्थात् प्रियतम है और सर्वत्र सबकी सत्ता के रूप में स्वयं सिद्ध परम तत्व हैं ।

15– हरि परमात्मा की प्रसन्नता के लिये दान, यज्ञ, तप, पवित्रता एवं व्रतों की भी अपेक्षा नहीं है । वे तो केवल निष्काम भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं ।

16- अहंकार जगत में आराम से रहना चाहता है, किन्तु जीवात्मा को परमात्मा में ही विश्राम मिलता है ।

17- सदाचार की पूर्णता बिना शारीरिक उन्नति नहीं होती ।

18- सेवा की पूर्णता बिना मानसिक उन्नति नहीं होती ।

19- ममता अहंता आदि दोषों के त्याग की पूर्णता बिना आत्मिक उन्नति नहीं होती

20- चाह रहित हुए बिना अहंता ममता नष्ट नहीं होती ।

21- सुखा सक्ति मिटे बिना चाह का अन्त नहीं होता ।

22- प्रेम की पूर्णता बिना सुखासक्ति नहीं मिटती ।

23- परमात्मा की योगानुभूति हुए बिना प्रेम

की पूर्णता नहीं होती ।

24- स्वयं को सब में पाकर सबको परमात्मा में पाकर प्रेमपूर्ण होता है ।

25- अहंकार जब तक किसी वस्तु व्यक्ति को अपनी मानेगा तब तक ममता न छूटेगी। ममता छूटे बिना लोभ, मोह का अन्त नहीं होगा- यही प्रेम की पूर्णता में बाधक है।

26- जो स्वयं से असन्तुष्ट होता है और दूसरों की समृद्धि से दुखी होता है तब अहंकार को ईर्ष्या होती है । जो कुछ है उससे कुछ और बनना चाहता है तब ईर्ष्या की जलन बढ़ती है।

27- जो गृहस्थ, श्रद्धा सम्पन्न, आत्म ज्ञानी, सन्तोषी, सहनशील, क्षमा करने में बीर, उदार, कर्तब्य निष्ठ, माता पिता गुरु तथा अतिथि का सेवक, सरल विनम्र है वह साधु है और वह

गृह ही तीर्थ है ।

28- तुम विवेकपूर्वक घर में तीर्थ सेवी होकर रहो और आरम्भ से ही बालक बालिकाओं को गुरू वाक्यों का दान करते रहो जिससे कि वे भी आगे चलकर गुरू वाक्यों के दानी बन कर पुण्यवान हो सकें ।

29- बालक, तुम्हें जो कुछ बोलते हुए सुनेंगे वैसा ही बोलेगे जैसा तुम्हें करते देखेंगे वैसा ही करेगे इसलिये उनके सामने तन से वाणी से कोई पाप प्रवृत्ति न होने दो ।

30- बालक माता-पिता से सुनकर ही 'मैं' और 'यह मेरा' कहते हैं, फिर जीवन भर नहीं भूलते ।

31- यदि तुम पुण्यवान पिता माता हो तो सन्तान को वही सुनाओ, वही दिखाओ जो सुखद होने के साथ हितप्रद हो ।

32– जिसका हृदय सदाचार के पालन से निर्मल हो गया है तथा क्षमा और सत्य द्वारा जिसने अतुलनीय सहन शीलता प्राप्त कर ली है, जो आत्मज्ञान की गंगा का निरन्तर सेवन करता है उसे वाह्य तीर्थ की आवश्यकता नहीं रह जाती । वह स्वयं तीर्थ बन जाता है दूसरों को तीर्थ बना देता है ।

परिवार में परस्पर गुरू वाक्य प्रदान करो

33– पुत्र पुत्री रूप में परमेश्वर की ज्ञान स्वरूप आत्माओं को बार–बार समझाओ, सुनाओ कि जो यह देह तुम्हें मिली है, तुम्हारा स्वतन्त्र अधिकार इस देह में नहीं है ।

34– जिन सम्बन्धियों को तुम अपना मानते हो इनका प्रारब्धानुसार संयोग हुआ है; कभी न कभी वियोग होना निश्चित है । धन भवन आदि का मिलना और छूटना निश्चित है ।

३५– बाल्यावस्था के बाद युवावस्था आना निश्चित है, उसका जाना भी निश्चित है– इसे समझ लो ।

३६– जीवन में जो कुछ भी मिलेगा वह यहीं छूटेगा इसे स्मरण रक्खो और जो स्वरूप अथवा जो चेतन आत्मा सदा रहेगा उसे भी जान लो ।

३७– सोना, चाँदी, धन, भूमि, बाहर की जो भी सम्पदा मिले उसका सही उपयोग और सेवा तथा दान में सदुपयोग करने का विवेक प्राप्त करो, क्योंकि यहाँ की सम्पदा यहीं छूटेगी ।

३८– तुम जितनी अधिक सम्पत्ति प्राप्त करोगे अन्त में विपत्तिदायी होगी, स्वयं में सम्पदा खोजोगे तो परमात्मा मिलेगा ।

३९– बहुत कम धनी हैं जो आँखें खोलकर

चलते हैं, जिनकी आँखों में ध्न ऐश्वर्य की चर्बी छाई रहती है वही क्रोधावेश में कठोर व्यवहार करते हैं ।

40- बाहर की सम्पदा में बन्धन है भीतर की सम्पदा मुक्तिप्रद है ।

41- तुम्हारी श्रेष्टता यही है कि बड़ों गुरूजनों का सम्मान तथा उनकी सेवा एवं उनकी प्रसन्नता के अवसर नहीं खो देना ।

42- विनोद मात्र के लिये भी झूठ न बोलो, व्यसनों को स्थान न दो, किसी का उपहास करके उसे दुखी न होने दो । नित्य नियमित या अनियमित भी परमेश्वर का स्मरण करने का अभ्यास दृढ़ कर लो ।

43- तुम उस धर्म को जानो जो सनातन है, उस धर्म को ही हिन्दू, जैन, बौद्ध, आर्य, वैष्णव, उदासी, वैरागी, मुसलमान, ईसाई,

अपनी–अपनी मान्यता में सीमित करके अपना धर्म बता रहे हैं ।

44– जो लोग अपने–अपने धर्म स्थानों अर्थात् मन्दिरों में जाकर आत्मा में नहीं लौटते वह बाहर ही रहते है, सतधर्म में प्रवेश नहीं कर पाते । सनातन धर्म एक है, सभी का है।

45– यदि तुम अभी आरम्भ से ही आत्मदेव को ही महादेव समझ, अन्तर में ध्यान से देखने का अभ्यास करोगे तब तो कभी न कभी आत्मा के योगानुभव से तृप्त सन्तुष्ट शान्त हो सकोगे ।

46– तुम परमात्मा के प्रति जिस नामरूप में श्रद्धा रखकर प्रार्थना करोगे उसी रूप से वह तुम्हारी सुनेगा ।

47– यदि अपने हृदय में ही प्रभु से बातें करोगे तो हृदय में ही उत्तर मिलेगा, परन्तु

अटूट धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा की अपेक्षा होगी ।

48- सच्चिदानन्द आत्मा की विमुखता में ही समस्त क्लेश हैं, भय हैं, चिन्तायें हैं ।

49- जब अपने को देखना आरम्भ करोगे तब पता लगेगा कि तुम भीतर से कितने अभिमानी, कामी, लोभी, ईर्ष्यालु, द्वैषी, क्रोधी, झगड़ालू, मूर्ख और मूढ़ हो- इस प्रकार अपना ज्ञान प्राप्त करते हुए क्रमशः और गहरे उतरने का मार्ग मिलेगा ।

50- आत्मज्ञान की पूर्णता के लिए स्थूल सूक्ष्म कारण देह की सीमाओं को पार करना होता है ।

51- आत्मज्ञान, विवेक का आरम्भ है । ब्रम्हानन्द में तृप्ति है । परमात्मा में आन्नद ही आनन्द है ।

52- जगत में, समाज में, तुम जितनी

उन्नति चाहोगे उतना ही स्पर्धा के कारण हिन्सक होते जाओगे ।

53- किसी से कुछ चाहोगे तो उसके ही आधीन रहना होगा ।

54- प्रेम भाव से तुममें अद्भुद आन्तरिक सौन्दर्य बढ़ेगा । तुम समस्त वस्तुओं को प्रेम भाव से देखने के अभ्यासी हो जाओ तभी अतिशय विचारशीलता, सजगता व धैर्य की वृद्धि होगी।

55- जब तुम एक साथ कई इच्छाओं की पूर्ति चाहते हो तभी अनुशासन की आवश्यकता है।

56- कुछ बनने की इच्छा करना मूर्खता है । जैसे तुम हो वैसा न देख पाना मूढ़ता है।

57- तुम सारग्राही बुद्धि के द्वारा मधु मक्खी की भाँति मधु का ही चयन और आस्वादन

करो । मच्छड़ की भाँति रक्त शोषण की आदत से बचते रहो ।

58- देहाभिमानी शिवमय होता है, आत्मज्ञानी शिवमय होता है । तुम शिव के प्रकाशक शिव के प्रेमी हो जाओ ।

59- हजारों अशिक्षित और शिक्षित लोग ग्रामों में और नगरों में इसलिये बरबाद होते हैं क्योंकि वह परस्पर एक दूसरे की सम्मृद्धि को सहन नहीं कर पाते; तुम उनकी दुर्दशा को देखों और ईर्ष्या द्वेष निन्दा से बचते रहो ।

60- विचार करते रहो कि, जो मिला है यह कब तक रहेगा ? साथ क्या जायेगा ? करने योग्य क्या है ?

तुम यदि दरिद्र नहीं हो तो सेवा प्रेम के बदले में कुछ भी न चाहो, तब तुम अपने में

ही प्रेम से पूर्ण तृप्त रहोगे ।

61- जो माता पिता अपनी सन्तान को धर्म कर्तब्य की शिक्षा नहीं दे पाते, जो धर्म की साधना में नहीं लगा पाते, जो गुरू वाक्यों को प्रदान करने की योग्यता नहीं रखते वे सन्तान के पतन-पाप में भागीदार बनते हैं ।

62- सन्तान में सुसंस्कार डालने के लिये घर में सन्त महात्मा के चित्र, भगवान के चित्र, अथवा मूर्ति रखना भी आवश्यक है ।

63- जिस प्रकार पाषाण में मूर्ति व्यापक है पुष्प में गन्ध, फलों में स्वाद व्यापक है उसी भाँति सब में परमात्मा व्यापक है- इसे समझना चाहिये ।

युवकों विद्यार्थियों के लिये गुरू वाक्य

64- मनुष्य ही नहीं प्रत्युत राक्षसी, दानवी, आसुरी प्रकृति वाला भी विद्वान हो सकता है

।

65- युवकों के आचरण से उनकी सही या गलत शिक्षा का अथवा विद्या के दुरूपयोग या सदुपयोग का परिचय मिलता है ।

66- तुम अच्छे वर्ण के विद्यार्थी युवक हो तो विनय, नम्रता, उदारता आदि सद्‌गुणों के विकास का लोभ बढ़ाओ । सदगुणों का लोभी ही अच्छे वर्ण का माना जायगा ।

67- विद्या के साथ विवेक की नम्रता बृद्धि हो वही सही शिक्षा है । सही शिक्षा की कमी से मनुष्य उद्दण्ड अति दरिद्र बन रहा है ।

68- सही शिक्षा के प्रभाव से युवक दूसरों को कष्ट पहुँचाये बिना स्वयं कष्ट सहते हुए सदगुणों का विकास करता रहता है ।

69- सही शिक्षा वही है जिसके द्वारा सज्जनता बढ़े और कुशल कर्मों का अभ्यास

हो।

70- झूठ से प्रीति बढ़ाने के प्रथम ही तुम स्वीकार कर लो कि चेतन तत्व आत्मा अविनाशी है, पवित्र है, उसकी जन्म मृत्यु नहीं होती ।

71- आरम्भ से ही घर में, समाज में, विद्यालय में तुम प्रतिकूलताओं को सहने के अभ्यासी बनो । जिससे कि तुम सेवा में, दोषो के त्याग में, और सदगुण विकास में पूर्णता प्राप्त करो।

72- लाखों विद्वानों में साधु महात्माओं में कुछ ही गुण, दोष की मीमाँसा करने वाले आलोचक हुए हैं और अब भी हैं आगे भी होंगे जिनके द्वारा मानव समाज को प्रकाश पूर्ण प्रेरणा मिली है, मिल रही है और मिलती रहेगी । तुम उन्हीं के संग से अपना अध्ययन

करो ।

73- ध्यान रहे, आलोचना को निन्दा समझने की भूल नहीं करना है ।

74- जो तुम्हारे अज्ञान को भूल एवं भ्रम को प्रकट करता है वह तुम्हारा शत्रु नहीं, परम हितैषी है ।

75- तुम किसी को महात्मा मानते हो, श्रद्धापूर्वक मान देते हो परन्तु उसके सब कुछ को अर्थात तन मन को महात्मा मानने की मूढ़ता न करना ।

76- विवेक दृष्टि से हीन लोग जब सब कुछ को महात्मा मान लेते हैं तब उसमें जो श्रेष्ठ महात्मा था उसका भी अन्ध विश्वास के कारण अनादर करते देखे जाते हैं ।

77- तुम किसी महात्मा की किसी महात्मा से तुलना करके अपने अहंकार को आगे नहीं

रक्खो ।

78- तुम किसी के अनुकूल भले ही हो जाओ परन्तु दूसरों को अनुकूल बनाये रहने का प्रयास व्यर्थ ही होगा ।

79- सही शिक्षा न मिलने से मन का सन्तुलन और शरीर दोनों बिगड़ते हैं ।

80- शिक्षा केवल रटाने पढ़ाने सिखाने से ही पूर्ण नहीं होती ।

81- सही शिक्षा में ब्रम्हज्ञान प्रकृति एवं माया विज्ञान तो होता ही है, उसमें यह भी समझना आवश्यक है कि भोजन खूब चबाकर करो । काटने की आदत भोजन में लग जाये जिससे क्रोध कम होगा दूसरों को काटने, चबाखाने की चेष्टा नहीं होगी ।

82- सही शिक्षा में समझाया जाता है कि आवेश में होकर किसी के सामने उछलना,

कूदना, आक्रमण करना है और जोर लगाकर चिल्लाना है तो भगवान के पावन नामों को जोर से उच्चारण करो, नाम लेकर नाचो, कूदो जिससे कि दूसरों को आघात न पहुँचे । शक्ति का प्रयोग अशुभ में नहीं, शुभ में ही करो ।

83- इस समय शिक्षा से बुद्धि विकसित हो रही है परन्तु मानवता दबी हुई है ।

84- शिक्षित के पास, उपदेशक के पास शब्दों का सन्चय है, मष्तिस्क बड़ा हो गया है पर हृदय तथा भावना देह सूखी हुई है । महत्वाकांक्षां, प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है ।

85- जो शिक्षित, सदभावना एवं विवेक से रहित है वह राक्षस है । बुद्धि के द्वारा फैक्टरी बनती है, विशाल हृदय द्वारा साधना सेवा के लिये मन्दिर बनते हैं, घर ही मन्दिर बन जाते हैं ।

८६– यदि तुम शिक्षित विद्वान हो तो अपने हित तथा दूसरों के हित के लिए अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये दूसरों को हानि न पहुँचाओ ।

८७– विचार कर लो कि शिक्षित विद्वानों द्वारा ही समाज में ह्रास भी होता है और विकास भी होता है ।

८८– तुम अपने और समाज के उत्थान के लिये वीतराग सन्त से प्रेरणा एवं परामर्श प्राप्त करो, या स्वयं ही राग रहित होकर सत्यानुरागी होकर सुन्दर समाज के निर्माण में सहयोगी हो जाओ ।

८९– तुम्हें अपने से छोटों को शिक्षा देनी ही होती है अतः शिक्षा के साथ आत्म ज्ञान विज्ञान से तृप्त महापुरूष से दीक्षा अवश्य ही प्राप्त करो ।

९०– दीक्षा प्राप्त किये बिना शिक्षा शक्ति सम्पत्ति का सदुपयोग नहीं होता । जीवन के अध्ययन की योग्यता दीक्षा से ही आती है । दीक्षा के लिये श्रद्धा की अपेक्षा है ।

९१– श्रद्धावान ही कर्तब्य पालन में तत्पर और इन्द्रियों में संयमी होता है । यदि तुम्हारे हृदय में श्रद्धा जाग्रत नहीं है तब तो अहंकार कठोर है साथ ही दोषदर्शी है ।

९२– शिक्षा तथा विद्या सामर्थ्य है, दीक्षा प्रकाश है । शिक्षा से कर्म में विधिवत सुन्दरता आती है, दीक्षा से सदभाव द्वारा सदगति मिलती है । अशिक्षित से उतनी हानि नहीं होती जितनी दीक्षा रहित शिक्षित व्यक्ति से होती है, हो रही है ।

९३– दीक्षा से ही परमात्मा में अविचल आस्था दृढ़ होती है, मोह मिटता है । शिक्षा

से पशुता का निरीक्षण और दीक्षा से दिव्यता का अवतरण होता है ।

94- दीक्षा से रहित व्यक्ति अज्ञान वश अहंकारी होता है । अहंकार किसी का भी सहारा लेकर अकड़ता है । बड़े भवनों का अहंकार नहीं होता, प्रत्युत अहंकार ही बड़े भवन बनाता है।

95- अहंकार नित्य ही बनता रहता है । मनुष्य अहंकार को नित्य नई शक्ति एवं गति देता रहता है और दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है इसीलिये अपने को वस्त्राभूषणों से, पद से, उपाधियों से सुसज्जित करता है ।

96- अहंकार जितना ही हीनता से पीड़ित होता है उतना ही श्रेष्ठता को खोजता है ।

97- निर्णय करो कि कितनी थोड़ी जगह में,

थोड़ी सी सम्पत्ति में अपना निर्वाह तुम कर लेते हो परन्तु तुम्हारा अहंकार कितने विस्तार में रहते हुए अतृप्त ही रहता है ।

98- एक सम्राट महल के किसी कमरे में चार पाँच हाथ भूमि में रहता है परन्तु उसके अहंकार के लिये सैकड़ों कमरे भी पूरे नहीं पड़ते ।

99- भले ही तुम विश्व की सर्वोच्च उपाधियाँ प्राप्त कर लो लेकिन जब तक स्वयं को नहीं जानते हो तब तक अहंकार से विमूढ़ व्यक्ति में से हो । विमूढ़ व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं हो पाता ।

100- जिस सुखी के चारो ओर दुखीजनों की भीड़ होगी, जो धनवान निर्धनों से घिरा होगा वह शान्त निर्भय नहीं हो सकता ।

101- दुखी जनों को सुख बाँटना, निर्धनों की

धन से सहायता करना, शान्त और अभय होने का उपाय है ।

102– जगत के द्वन्द्वों में सम रहने की क्षमता प्राप्त कर लो द्वन्द्वों से बचने का प्रयास न करो।

103– पाप बृद्धि के लिये बाहर से बहुत शक्ति लेनी होती है, बहुत श्रम करना पड़ता है परन्तु पुण्य बृद्धि के लिये शक्ति जितनी मिली है उतनी ही पर्याप्त है, श्रम भी नहीं है ।

104– प्रेम एवं विवेक द्वारा प्रत्येक कर्म अर्थात किसी की सेवा के लिये उठने, बैठने, चलने, बोलने, सुनने में ही पुण्य हो सकते हैं ।

105– क्रोध के लिये बहुत शक्ति चाहिए किन्तु क्षमा के लिये, और क्रोध को ध्यान से

देखने के लिये शक्ति की अपेक्षा ही नहीं है । बन्धन के लिये बहुत श्रम और शक्ति की आवश्यकता है किन्तु मुक्ति एवं विश्राम के लिये किसी प्रकार के श्रम की अपेक्षा नहीं है।

106– मूर्ख लोग नहीं जानते कि एक ऐसी मूर्ति है, ऐसा रंग रूप है जिसे ध्यान से देखने पर मष्तिस्क विकृत पागल हो सकता है और एक मूर्ति ऐसी भी है जिसे ध्यान से देखने वाले का पागलपन समाप्त हो सकता है । तुम पवित्र दर्शन पर ध्यान दो ।

107– जब होशआ जाये तभी व्यर्थ अनर्थ को छोड़ दो । शिक्षा तथा विद्या वही सार्थक है जो आत्म ज्ञान की पूर्णता में सहायक हो आत्मज्ञान की पूर्णता के लिए आत्मज्ञान की दीक्षा आवश्यक है ।

साधकों के लिये गुरू वाक्य

योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ् निरोधोऽपरिग्रहः ।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्त सेवनम् ।।

108- मौन रहना, सन्चय न करना, किसी से आशा न रखना, निश्चेष्टता इच्छा रहित होना एकान्त सेवन यह योग के प्रथम द्वार हैं ।

109- शरीर का अकेला होना एकान्त नहीं है । सम्बन्ध न होना एकान्त है ।

110- हृदय गुहा में उतरना योगी का एकान्त है । एकान्त में आनन्दानुभव होता है केवल अकेलापन उदासीन बनाता है ।

111- अनेक से सम्बन्ध न रहने में एकान्त होता है । किसी अन्य की याद या कोई संकल्प एकान्त में बाधा है । स्वयं के अतिरिक्त कोई अन्य न हो वही गुह्य एकान्त है ।

112- निष्काम होना ही आत्मा में स्थिर होना

है ।

113– वृति को देखना ही निरोध है, दमन करना विरोध है ।

114– किसी वस्तु को अपनी न मानना अपरिग्रह है ।

115– आत्मा की विस्मृति में ही विनाशी से सम्बन्ध है । अनित्य की विस्मृति में नित्य आत्मा का योग है ।

116– संयोग में ही सुख दुःख है, योग में दुःख का अन्त है ।

117– ऐसा कोई दरिद्र नहीं जिसके पास कुछ भी समय न हो, खाली समय में ध्यान के लिए शान्त हो जाइये । किसी कोने में कहीं भी बैठ जाइये ।

118– जो आत्मा को सब में और सर्व को आत्मा में देखता है उसकी दृष्टि से आत्मा

परमात्मा सदा विद्यमान रहता है ।

119- ज्ञान दृष्टि वही है जिसे सर्वत्र परमात्मा ही दिखे ।

120- सब कुछ चेतना के भीतर ही सबमें एक ही सत्ता है ।

121- निपट शून्य होने में दर्शन होने लगते हैं । जहाँ द्वार है वहीं शून्यता है ।

122- चेतन मन से इस जन्म के कर्मों का संग्रह है । अचेतन मन में बीते हुए जन्मों का संग्रह है ।

123- जहाँ अन्य से सम्बन्ध है वही मन है, संकल्पों इच्छाओं का समूह ही मन है ।

124- शून्य से मन की उत्पत्ति है ।

125- मन के स्तर पर तृप्ति नहीं होती, मन के पार ही संतृप्ति का लोक है ।

126- जितने जप तप दान पुण्य अहंकारपूर्वक

किये जाते हैं वह अहंकार के भूषण बनते हैं ।

127- स्वयं तक वही पहुँच पाता है जो चलता ही नहीं, ठहर जाता है ।

128- खाली होना ही निर्विकार होना है ।

129- शून्य होना ही पवित्र होना है । सो जाना शून्य नहीं है ।

130- विचारों का उठना ही विकारी होना है ।

131- मौन रहन जब कठिन होता है तभी बोलने का बहाना लिया जाता है कुछ कहा जाता है ।

132- विचार शान्त होने पर केवल चेतना को बोध होता है, अहं चेतना नहीं रहती ।

133- असीम की ओर देखना ध्यान है, मिलना ही समाधि है ।

134- जिसे हम चाहते हैं वही सुख है ।

जिसे नहीं चाहते वही दुःख है ।

135- दुःख सुख में सम शान्त रहने पर आनन्द का द्वार मिल जाता है ।

136- प्रायः लोक वस्तु व्यक्ति के संयोग का सुख ही चाहते हैं, आनन्द नहीं चाहते ।

137- हमें यह भी समझाया गया है- तुम ध्यान से देखो तो तुम्हीं ध्यान हो । तुम्ही ज्ञान स्वरूप हो तुम स्वयं प्रेम ही हो ।

138- जो है, उसे स्वीकार कर लो पूर्ण शान्त शून्य हो जाओ ।

139- मन जब नहीं रह जाता तभी आनन्द का अनुभव होता है ।

140- ज्ञान जाग्रत होने पर महात्मा बुद्ध को, भर्तहरि, गोपीचन्द आदि महाराजाओं को साम्राज्य निस्सार प्रतीत हुआ, किन्तु अज्ञान में सबको अटैची मनीबेग बहुत बड़ी दिखती है ।

141- ममता ही अहंकार की शक्ति है । संग्रह ही अहंकार का बल है । वस्तुओं में आसक्ति लोभ पाप है वस्तुओं में अनासक्ति पुण्य है ।

142- कामना युक्त महाराजा भी गरीब है । कामना वासना से रहित ही समृद्धि शाली है ।

143- जिसे कहीं जाकर पाना चाहते हो वह प्रभु परमात्मा यहीं प्राप्त है ।

144- जहाँ चलकर पहुँचना चाहते हो उस परमतीर्थ स्वरूप में प्रथम ही पहुँचे हुए हो । मानी हुई दूरी जानते ही मिट जाती है ।

145- अहंकार का पिघलना, खोना मिटना ही सत्य के निकट होना है ।

146- कुछ होने में बन्धन है, कुछ न होने में मुक्ति है ।

147- जहाँ हम हैं वहीं उपासना है । जब

हमारा जगत से सम्बन्ध है तब वासना है ।

148- सुख की आशा का त्याग करने पर दुःख की निवृत्ति अपने आप हो जाती है ।

149- देह रूपी दीवार के भीतर शून्य चेतन आत्मा है । देह रूपी दीवार काँच की भाँति है । काँच का बर्तन जब तक ठहर जाये- आश्चर्य है, क्योंकि तनिक से आघात से टूट जाता है ।

150- मन को खाली न करो अपितु उसे भरना बन्द कर दो ।

151- अहंकार सब कुछ का मालिक बनकर भगवान को भी अपनी सीमा में बाँधना चाहता है ।

152- जो सब कुछ छोड़ देता है वह पाने योग्य को स्वतः पा जाता है ।

153- सुखासक्ति भोगासक्ति के रहते तुम

वस्तुओं की आसक्ति नहीं छोड़ सकते ।

154- धन द्वारा तुम्हें जगत में सब कुछ मिल सकता है परन्तु शाँति नहीं मिल सकती ।

155- क्रोधी व्यक्ति अपने आप स्वयं को दण्ड देता है ।

156- मन का संतुलन, तटस्थता, उपेक्षा करूणा, प्रसन्नता बहुत ऊँची समझ में ही सम्भव है ।

157- संकल्प रहित हो के देखो, जो शेष बचता है वही निराकार आश्रय है ।

158- शत्रु मित्र दोनों में परमात्मा को देखो । स्वयं में स्थिर होने पर ही यह समता सहज होती है ।

159- सुख दुख के दृष्टा बनो सुखी दुखी न बनते रहो सुख को स्वीकार करना ही दुख को आमन्त्रित करना है ।

160– सुख दुख में समस्थित हुए बिना स्वाधीनता नहीं मिलती है ।

161– सुख में जो गुरू ज्ञान को पकड़ लेगा वहीं दुःख में अविचलित शान्त रहेगा ।

162– घर में खजाना है पर बता न सके तो व्यर्थ है उसी प्रकार आत्मा है पर ज्ञान नहीं है तो कहना व्यर्थ है ।

163– मनुष्य, अखबार, रेडियों, भोगों से नहीं ऊबता, साधना से ऊबता है ।

164– बैठकर ध्यान से मन ऊबे तो खड़े होकर, दौड़ कर ध्यान से देखो । ध्यान को देखों, ध्यान ही तुम हो ।

165– सहयोग से मन चन्चल होता है असहयोग से स्थित होता है ।

166– दर्शन के लिये अनन्त प्रतीक्षा की क्षमता चाहिए ।

167– ज्ञान दृष्टि से परमात्मा ही दृश्य है, जो भी दिखता है वह परमात्मा है । सब कुछ चेतना के भीतर है सबमें सत्ता ही है ।

168– यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च माँय पश्यति ।

तस्याहं न प्रणश्यामि सच में न प्रणश्यति ।।

जो मुझको सबमें और सबको मुझमें देखता है उसकी दृष्टि से मैं कभी ओझल नहीं होता हूँ । और मेरी दृष्टि से वह कभी नष्ट नहीं होता– यह गुरु वाक्य निरन्तर स्मरणीय है । जो सबमें सभी जगह है तब सब नाम उसी के हैं । उसे जान लो, समझ लो, ठहर जाओ, योगानुभव करो ।

169– जीवन सम्पदा स्थिर होने से दीखती है, दौड़ने भागने से नहीं ।

170– अज्ञानी, जीते हुए भी चिन्ता ग्रस्त है । ज्ञान में, मरते हुए भी जीवन का आलिंगन है ।

171– ज्ञान में वियोग को स्वीकार करो, क्योंकि जितने दिन संयोग मिला, सम्मान मिला वह बहुत मिला – ऐसा सोचकर सहर्ष दाता प्रभु को धन्यवाद दो ।

172– प्रतिकूलताओं में प्रभु कृपा का स्मरण करो, शान्त रहो, संघर्ष में न उतरो ।

173– अनुभव करो– दो के भीतर एक ही निवास है । रूप अनेक है, चेतना एक ही है।

174– यह स्मरण रक्खो स्वांस का भीतर जाना ही जन्म है, बाहर निकल जाना मृत्यु है।

175– जाग्रत में जब दृश्य से सम्बन्ध नहीं रहता तब मैं का बोध होता है । दूरी न रहने

पर प्रभु का योग और भेद न रहने पर बोध होता है ।

176– साधक जब तक कहीं आसक्त रहता है तब तक शान्ति मुक्ति सुलभ नहीं होती।

177– जब पकड़ कर कुछ नहीं पा सके तब छोड़कर देख लो । जब दौड़कर कुछ नहीं पाया तब ठहर कर देख लो । जब बोलकर कुछ नहीं पाया तब मन से वाणी से मौन हो कर देख लो ।

178– जब इधर उधर जाकर कुछ नहीं पाया तो बीच में रह कर देख लो ।

179– न कर्ता बनो न त्यागी बनो । सब कुछ हो रहा है ऐसा स्वीकार करो ।

180– ज्ञानी भक्त वही है जिसे अपना कुछ भी नहीं प्रतीत होता ।

181– आना जाना वस्तु का स्वभाव है स्वभाव

से संघर्ष न करो ।

182– परमात्मा को पाना नहीं है उसकी विस्मृति को हटाना है ।

183– कुछ भी न करने में योग सुगम हो जाता है ।

184– तुम्हें जो कुछ मिला है उसके प्रति यदि अन्धे हो, और जो नहीं मिला है उसके प्रति सजग हो तो तुम अज्ञान में हो ।

185– महत्वाकाँक्षी कभी नहीं सोचता कि मैं कौन हूँ वह देखता है कि मेरे आगे पीछे कौन है ।

186– प्रायः तुम सब साथ हो जाते हो पर अपने साथ नहीं होते हो । किसी के संग में स्वयं को न भूलो ।

187– तुम बुरा को बुरा मत कहो भला को भला मत कहो समझ लो कि अपना अपना

स्वभाव है ।

188- जब तक तुम मिले हुए को अपना और अपने लिये मानते हो तब तक कर्तब्य परायण नहीं हो सकते ।

189- अशान्त क्षुब्ध पराधीन रहकर भेदभाव रखकर कर्तब्य परायन नहीं हो सकते ।

190- अधिकार का अभिमान रखते हुये राग तथा क्रोध से नहीं बच सकते ।

191- स्वयं शान्त रहो, तन मन धन से सेवा करो, प्रेम केवल परमात्मा में लगाओ ।

192- गम्भीर निरीक्षण के द्वारा चेतन से अचेतन में प्रवेश होगा । अचेतन मन में कई गुना अधिक शान्ति है ।

193- चाहरहित, ममतारहित, होकर ही तुम अनन्त में आत्मीयता दृढ़ कर पाओगे ।

194- अहंता ममता कामना रहने तक जड़

जगत का प्रभाव बनाा रहता है ।

195– जो 'मैं' से संयुक्त है वही जीवात्मा और जो 'मैं' मुक्त है वही परमात्मा है ।

196– जब तुम्हें भगवान की नित्य उदारता का ज्ञान होगा तब माँगना बन्द कर दोगे ।

197– जो सही होता है उसे माँगना नहीं पड़ता, बिना माँगे ही मिलता है । जो माँगता है वह सही नहीं हो सकता ।

198– जो बाँटता है, उसे मिलेगा, जो बटोरता है वह खो देगा ।

199– माँगने से हृदय द्वार सिकुड़ता है, देने से खुलता है ।

200– तरंगे जब नहीं होतीं तब प्रशान्त सागर के दर्शन होते हैं । जब वृत्तियाँ एवं विचार नहीं होते तब शान्त परमात्मा का अनुभव होता है ।

201– तुम ध्यान से श्वासों को तथा नाभि के स्पन्दन को देखते रहो, देखते–देखते जो होना चाहिये स्वतः होगा ।

202– पूर्णता के प्रयास को छोड़ना ही पूर्णता की साधना है ।

203– विचार से ‘पर’ जाना जाता है, ध्यान से ‘स्वयं’ को जाना जाता है ।

204– चित्त की निष्क्रियता में, शान्ति में, भीतर प्रवेश द्वार खुलता है ।

205– जगत चिन्तन के कारण परमात्मा की विस्मृति रहा करती है ।

206– जो कुछ भी आये उसे नियति मानकर यदि तुम शान्त रहोगे तभी आक्रमण से बच सकोगे । परन्तु बहुत सजग रहने पर ही शान्त रहना सुगम होगा ।

207– अहिन्सक हृदय अनजाने होने वाले

अपराधों के लिये क्षमा माँगता है ।

208– हिंसक अहंकार, उठते बैठते हँसते तथा संकेत करते विवाद करते हुए प्रचार, सुधार करते हुए भी किसी न किसी को चोट पहुँचाता रहता है । जब तुम सभी प्रकार की प्रतिकूलताओं में शान्त प्रसन्न रह सकोगे तभी समता में रहकर क्रोध से बच सकोगे।

209– मैं भाव से ही हिंसा चलती है । चित्त वृत्ति जब नहीं रहती तब अहंकार नहीं रहता है ।

210– देखो वह कौन है जिसके बिना तुम रह ही नहीं सकते वही परम प्रियतम है ।

211– तुम उसे ही अपना मानकर 'मेरा' कहो जिसका कभी विनाश नहीं होता ।

212– तुम उसी के साथ मिलकर 'मैं' कहो जिसका कभी ह्रास ही नहीं होता ।

213- जिसमें ज्ञान एवं प्रेम की पूर्णता हो जाती है वह सबके प्रति अकारण ही प्रेम से भरा रहता है ।

214- तुम सदभाव, प्रेम, करूणा, अहिंसा एवं सेवा द्वारा ही परमात्मा तक पहुँच सकते हो ।

215- सत्य परमात्मा सर्वत्र सर्वदा है, जो कुछ भी दीखता है उसी के द्वारा सत्य ही अभिव्यक्त हो रहा है किन्तु जो रूप पर अटक जाता है वह सत्यदर्शन से वन्चित रहता है ।

216- आत्मज्ञान एकमात्र ज्ञान है यदि तुम स्वयं को नहीं जानते, केवल सुनकर मान रहे हो तब तो सारा जीवन अन्धकार में यात्रा करेगा । आत्मज्ञान में ही यात्रा का अन्त और पूर्णता की प्राप्ति है ।

217- चेतन में सचेत रहो, विचारों के उद्‌गम को देखो ब्रम्ह में रहकर ब्रम्हचारी हो सकोगे

।

218– सिद्धियों चमत्कारों के लालच में न पड़ो । सिद्धियों के द्वारा तुम्हें शान्ति नहीं मिलेगी ।

219– सिद्ध परमेश्वर है उसे अपने हृदय में जानों, उसी के उपासक हो जाओ ।

220– जिससे जीवन में विश्राम मिले, शान्ति मिले वही सर्वोत्तम सिद्धि है ।

221– मौन में जब ''मैं मेरा'' का आघात शान्त हो जाता है तभी आत्मा की अनुभूति होती है ।

222– देहभाव से युक्त होना द्वेत है । अद्वेत में ही अभय पद मिलता है ।

223– आत्मा में मन बुद्धि स्थिर करने के समान कोई सरल साधन नहीं है । अपने अस्तित्व में ठहरते ही शान्ति का अनुभव होता

है ।

224- आत्मा ही हृदय देश में प्रतिष्ठित ईश्वर है वही आनन्दमय है । हृदय से भिन्न आनन्द की खोज करना अज्ञान है - यह अहंकार ही अज्ञानी है ।

225- यह जगत आत्मा का ही, अर्थात् ईश्वर का ही विराट रूप है । आत्मा ही हृदय है।

226- तुम हृदय केन्द्र में ध्यान न करके 'मैं' का अनुसन्धान करो ।

227- जब तुम आत्मा को जान लोगे तब किसी अनिष्ट का भय नहीं होगा ।

228- तुम्हारे भगवान जो कभी साकार थे, इस समय तुम्हारे हृदय में आत्मा के स्वरूप में ही विद्यमान है ।

229- तुम्हारे विश्वास अनेक हो सकते हैं पर सत्य एक ही है ।

230- शान्ति का होना ही आत्म साक्षात्कार है ।

231- साक्षात्कार को कोई कार्य न समझो । स्वयं के अस्तित्व को जानना ही आत्म ज्ञान है । आत्मा में दृढ़ रहो, मन का मूल श्रोत आत्मा ही है ।

232- जो सीमित है वही अहंकार है जो निःसीम है वही सत्य है ।

233- शान्ति की खोज न करो अशान्ति के कारण को देखो ।

234- मन को मजबूती से पकड़ो उसे केवल देखते रहो- यही मन को वश में करने का उपाय है ।

235- अधिक से अधिक जप से भी कुछ समय बाद अहंकार क्षीण होता है ।

236- भय, चिन्ता, सुख, दुख, अहंकार, सारा

जगत, मन में स्थित है, मन के त्याग होने पर सभी से मुक्ति मिल जाती है ।

237- अहंकार ही विज्ञान मय कोष में 'मैं' के रूप में स्फुरित हो रहा है ।

238- अपने शुद्ध स्वरूप में रहने से संस्कार नष्ट हो जाते हैं ।

239- मन को बाहर न जाने देना वैराग्य है । मन को भीतर मोड़ लेना यही अभ्यास है।

240- संकल्पों से शून्य होना मन की आत्मा में तल्लीनता है ।

241- प्राणायाम ध्यान में सहायक है । ईश्वर में दृढ़ होना ही मन का आसन है ।

242- संग्रह परिग्रह के रहते चिन्ता से मुक्ति नहीं मिलती ।

243- निन्दा सुनकर, अपमानित होकर अत्याधिक धैर्य धर्म का अंग है ।

244- बाहर यात्रा में जगत भासित हो रहा है, भीतर जाओ तो नित्य स्थिर आत्मा ही है वह नहीं चलती ।

245- अनुग्रह की याचना न करो, आत्मा ही अनुग्रह स्वरूप है ।

246- देहभाव में ही राग द्वेष है । आत्म चैतन्य में स्थिर रहो । भूतकाल का भार ही वर्तमान का क्लेश बनता है ।

247- जगत आत्मा की तरह दूसरी आत्मा नहीं है, जगत आत्मा से भिन्न भी नहीं है, यह आत्मा का अंश भी नहीं है ।

248- ब्रम्ह ही अहं के रूप में सभी नाम रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है । अहंभाव के मूल में देखो शुद्ध आत्मा ही मिलेगा ।

249- क्लेश कष्ट होने पर अहंभाव पर ठहर कर दृष्टा होकर देखो ।

250– त्याग का, ग्रहण का, संकल्प छोड़कर सब कुछ प्रारब्ध अर्थात् नियति पर छोड़ दो, केवल देखते रहो । अनासक्त दृष्टा ही ज्ञाता से अभिन्न होता है ।

251– इन्द्रिय दृष्टि से ग्रहण करोगे तब रागी बने रहोगे, बुद्धि दृष्टि से निर्णय करोगे तब विराग होगा, आत्म दृष्टि से ज्ञान में देखने पर वीत राग हो सकोगे ।

252– सारी अशान्ति अविवेक वश बलों के दुरूपयोग से होती है ।

253– स्वकर्त्तव्य भूलने पर दूसरों के कर्तव्य की चर्चा चलती है ।

254– क्रिया स्वतः होती है कर्म किया जाता है । कर्तब्य पालन उतना आवश्यक नहीं है जितना अकर्तव्य का त्याग आवश्यक है । प्रत्येक परिस्थिति में कर्तव्य पालन के लिये

सावधान रहो ।

255- दाता को अपना मानो और वस्तुतः उसी की समझकर सेवा के लिए उपयोग करते रहो ।

256- ममता, कामना आसक्ति त्यागे बिना देहादिक जड़ वस्तुओं से सम्बन्ध विच्छेद नहीं होता ।

257- सम्बन्ध एवं श्रम रहित होते ही, ''मैं'' स्वयं ही नित्य सत् से अभिन्न होता है ।

258- जब मेरा कुछ नहीं दीखता तभी अहम् ममता में बदल जाता है, अहम् और मम भाव मिटने पर प्रेम और प्रेमास्पद शेष रह जाता है प्रेमी नहीं रहता ।

259- ज्ञान ही तुम्हारी सत्ता है, वही आत्मा है, तुम ज्ञान में ही पर को जान रहे हो इसी ज्ञान में स्व को भी जान सकते हो ।

260- यदि तुम स्वाद की आसक्ति वश भोजन अधिक करते हो आलस्य तथा नींद के वश में होकर कर्तव्य कर्म छोड़ देते हो कामासक्ति वश संयम नहीं रख पाते हो तब समझ लो कि तुम्हारी जीवन सम्पदा को तुम्हारा ही पशु नष्ट कर रहा है, तुम पशु के वश में हो ।

261- यदि धन के लोभ वश संग्रह तो करते हो पर दान नहीं कर पाते हो तब तुम्हारे मन पर राक्षस का अधिकार है ।

262- यदि तुम अपने को श्रेष्ट मानकर अहंकार वश किसी का अनादर करते हो, कठोर वाक्यों का प्रहार करते हो किसी को तुच्छ नीच मानकर धनमद या पदाधिकार के मद में कष्ट देते हो रूलाते हो तब समझ लो, तुम्हारे ऊपर दानव शक्ति का अधिकार है ।

263– जितनी शक्ति से, योग्यता से, जितने धन से तुम सेवा सहायता एवं दान कर पाते हो उतने अंश में तुम्हारे जीवन में मानवता जाग्रत है ।

264– यदि तुम पाप प्रवृति से बचकर पुण्य कर्मों को पूर्ण करते हो, तुम्हारे हृदय में श्रद्धा दृढ़ है, पूज्य भाव से सेवा में तत्परता है, साथ ही आत्मज्ञान की प्यास प्रबल है और सन्तसद्गुरू का संग सुलभ हो रहा है और हृदय में प्रेम की प्रधानता है बुद्धि–विवेक युक्त है तब समझ लो कि तुममें भगवद्कृपा है, देवताओं की अनुकम्पा है ।

265– तुम सात्विक श्रद्धा में कमी न रहने दो, कर्तव्य पालन में तथा सेवा, दान, तप, में प्रमाद लोभ न रहने दो, इन्द्रियों को वश में रखकर वर्तमान में जो कुछ हो रहा है उसे ही ध्यान से देखो ऐसा करने से वह ज्ञान सुलभ

होगा जिससे मुक्ति होती है ।

266- ज्ञान द्वारा ही तुम सर्वत्र समस्थित परमात्मा का अनुभव कर सकते हो ।

267- जहां तुम परमात्मा से विमुख होकर तृष्णा कामना, ममता, द्वेष क्रोध के वश में हो जाओगे वहीं अशान्ति का घेरा तुम्हें शान्ति से वन्चित कर देगा ।

268- तुम अज्ञान में उसे अपना मानो ही नहीं जो छुट जायगा अथवा जो मृत्यु से वियोग से हानि से घिरा है । तुम उसे ही जानों, जो नित्य निरन्तर है और सदा रहेगा, जिसकी उत्पत्ति नहीं होती जिसका विनाश नहीं होता उसी को आत्मा कहते हैं । वह सभी आकारों में निराकार है, सभी का अस्तित्व है, सत्ता है, नित्य चेतन है ।

269- ऐसा कोई क्षण नहीं जब आत्मा नहीं

होता वह सदा विद्यमान है, उसे ही अपने में देखने की दृष्टि प्राप्त करो । अखण्ड ज्ञान, अनन्त प्रेम, सभी सद्‌गुण सदभाव ज्ञान के साथ रहते हैं । सभी दुर्गुण दोष अज्ञान के साथ रहते हैं ।

270– साधना के लिये समय को पकड़ते रहो । तुम निर्धन हो या धनी हो, समय सभी को सुलभ है ।

271– जितनी अधिक भीतर दरिद्रता होती है उतना ही बाहर संग्रह की चिन्ता बढ़ती है।

272– एक सन्त ने एक सम्राट से कहा था कि मैं इतना समृद्ध हूॅ कि संग्रह की आवश्यकता नहीं है और तू इतना दरिद्र है कि पृथ्वी का साम्राज्य पाकर भी उस दरिद्रता को नहीं भर सकता ।

273– जितना संग्रह उतनी ही शक्ति और

उतना ही प्रबल अहंकार बनता रहता है । यश धन पद प्रतिष्ठा आदि सभी की अधिकता से अहंकार बढ़ता है ।

274– जब तक कुछ पाने की कामना है तब तक अहंकार परिग्रह के बन्धन में हिन्सारत रहेगा ।

275– अहंकार की रिक्तता भरने में व्यस्त रहता है । रिक्तता को जो साधक नहीं भरता प्रत्युत उसे देखता है, वहीं आत्मा का अनुभव होता है । पूर्ण शून्य में ही परमसत्ता का बोध होता है ।

276– परमात्मा ही एक मात्र परमाश्रय है उसी में होने पर पूर्ण विश्राम है । कण कण में उसी की ही सत्ता है । नित्य निरन्तर, क्षण क्षण के पीछे परमात्मा ही विद्यमान है ।

277– जो नित्य जीवन को नहीं जानता उसके

साथ मृत्यु तो चल ही रही है, उसका समस्त लाभ मृत्यु से घिरा हुआ है ।

इन गुरु वाक्यों को मनन करो :–

278– जितनी अधिक ध्यान में आतुरता नहीं, प्रत्युत प्रतीक्षा होगी, निष्क्रियता होगी, जितना अधिक गम्भीर मौन होगा, उतना ही अधिक कर्तापना मिटता जायगा, तब समर्पण करना नहीं होगा, स्वतः समर्पण दीखेगा ।

279– करने का अभिमान न रह जाना ही समर्पण है । जिस शक्ति तथा साधनों से कर्म हो रहे हैं उसे देखो, तुम कर्ता नहीं हो ।

280– जहाँ विचार विलीन होते हैं वही नित्य योग का अनुभव एवं दर्शन का आरम्भ होता है । दर्शन होते ही अनित्य से मुक्ति और नित्य आत्मा की भक्ति एवं प्रेम सुलभ होता है ।

281- जो अहंकार को बचाता है उसे विनाश का दुख भोगना पड़ता है किन्तु जो अहंकार को मिटाता है वह आनन्द में हो जाता है ।

282- अहंकार की ही मृत्यु होती है, आत्मा नित्य जीवन है । आत्मा होकर जो दृष्टा श्रम को देखता है वही आत्मा में विश्राम का अनुभव करता है । सिन्धु में लहर का दौड़ना श्रम है लहर का शान्त होना विश्राम है ।

283- परमात्मा में ही समस्त गतियाँ हैं, उसी में गतियों का अन्त है, अन्त के पश्चात केवल अनन्त है ।

284- आत्म ज्ञान के लिये जितना ही तुम प्राप्त परिस्थिति में सन्तुष्ट रहते हो तथा चिन्ता भय, क्रोध से बचे रहते हो उतनी ही बुद्धि स्थिर रहेगी ।

285- यदि तुम आने जाने वाले सुख दुख में

हानि लाभ में समस्थिर रहते हो तब बुद्धि स्थिर रहेगी ।

२८६– सुबुद्धि एवं विवेक द्वारा एक ही जन्म में सहस्त्रों जन्मों के लिए पुण्यों का सन्चय कर सकते हो । स्थिर बुद्धि से आत्म ज्ञान में शान्त रह सकते हो ।

२८७– समस्त पाप अज्ञान में होते हैं और समस्त पापों से मुक्ति आत्म ज्ञान से परमात्मा के प्रेम से हो जाती है ।

मुक्ति भक्ति के साधन

२८८– बुद्धि को अशुद्ध न रहने दो, एकान्त सेवन करो स्वल्पाहार करो, इंद्रियों को वश में रखो, किसी वस्तु व्यक्ति में ममता न रखो, अहंकार को देखते रहो, ध्यान में तत्पर रहो, संग्रह न करो, क्रोधादि वेगों को सजग रहकर देखते रहो, शान्त रहो, शोक मोह चिन्ता में

शक्ति समय नष्ट न करो, बीती घटना का मनन तथा आगे की चिन्ता न करो, जो नित्य निरन्तर सर्वत्र सर्वदा है, अभी है यहीं है उसे ही जानो, वही आत्मा परमात्मा है।

289- बीती हुई घटनाओं को दुहराते रहना, उन्हीं का मनन करते रहना, मुर्दापन है । भविष्य की चिन्ता में तथा योजना में तल्लीन होना अन्धापन है । वर्तमान को संहालना, सुन्दर रूप से व्यवस्थित करना जाग्रति है ।

290- जहाँ सुख दुख का अभाव है वहीं आनन्द है । आनन्द में जीवन को जानो, अतीत की स्मृतियाँ और भविष्य की चिन्तायें तुम्हें वर्तमान से मूर्छित न बना सके, इसके लिये सावधान रहो ।

इन गुरु वाक्यों को देखो

291- भीतर जितनी शाँति होगी, चित्त स्थिर

होगा, मन मौन होगा उतनी ही शीघ्रता से तुम्हें आत्मा में शक्ति का श्रोत सुलभ हो जायगा ।

292– जितनी अशान्ति होगी, चिन्ता होगी, व्यग्रता होगी, आधीरता आतुरता होगी उतनी ही शक्ति व्यर्थ नष्ट होगी । यदि तुम शब्द स्पर्श रूप रसादि विषयों के भोग से शक्ति को, (निष्क्रिय शान्त रहकर) सुरक्षित रख सकोगे, तब वही शक्ति प्रकाश का पुन्ज हो जायेगी ।

293– जहाँ अहंकार कर्ता नहीं रह जाता तब शक्ति सिन्तु परमात्मा का निरन्तर योग सुलभ रहता है ।

294– ध्यानस्थ साधक आत्मस्थ होता है, वह बाहर सब कुछ होते हुए देखता है करने के बोझ से मुक्त हो जाता है, कर्ता मिटने पर

समर्पण पूर्ण होता है ।

295- ध्यन से देखने पर स्वयं का मूल श्रोत स्वयं में ही मिलेगा ।

296- अपने स्वरूप को जानना ज्ञानी की भक्ति है ।

297- जीवन में जो कुछ मिलेगा वह स्वतः छूट जायेगा । लेकिन जिसे तुम कभी नहीं छोड़ सकते हो वही परमात्मा है ।

298- सुख का लालच, दुख का विस्मरण संसार में ले जाता है और दुख का साक्षात स्वयं में लौटा लाता है ।

299- सत्य की विस्मृत में ही संसार का प्रभाव रहता है ।

300- निर्विकार को पाने से विकास स्वतः छूट जाते हैं ।

301- आत्म अज्ञान में ही अहंकर की क्रीड़ा

चलती है ।

302– शान्त मौन होकर अहंकार देखा जाता है ।

303– शान्त रहने से तथा वर्तमान में जाग्रत रहकर प्रत्येक कर्म को देखते रहने से जब अहंकार समाप्त होगा तभी ज्ञान चक्षु खुलेगे ।

304– तुम पूर्व पापों का मनन न करो, वर्तमान में पुण्य कर्मो को पूरी शक्ति लगाकर पूर्ण करो ।

305– विचारों का प्रवाह तथा संकल्पों का समूह ही मन है ।

306– विचार दृश्य है, चेतना है, विचारों को जो जानती है वही चेतना है । विचारों का प्रवाह बाहर से है चेतना भीतर है । विचार को 'पर' कहते है । चेतना को 'स्व' कहते हैं।

307– विचारों को देखना ही ध्यानाभ्यास है ।

ध्यान से ही अन्तर ज्ञान बढ़ता जाता है। बाहर से आया हुआ ज्ञान अहंकार को पुष्ट करता है । आत्मा के ज्ञान में अहंकार नहीं रहता है ।

308– जिसका जन्म होता है वह जगत में ही समाप्त होता है लेकिन जीवन परमात्मा में सुरक्षित है ।

309– जन्म के साथ मृत्यु चल रही है । संयोग के साथ ही वियोग चल रहा है । सुख के साथ ही दूसरे पहलू में दुःख चल रहा है तुम दोनों को स्वीकार कर लो और फिर जो द्वन्द्व से नित्य मुक्त है उसे जानो ।

310– देहावलम्बी, पशु को पकड़े रहता है, आत्मावलम्बी प्रभु को पकड़े हुए देखता है । तुम्हारे आगे पशु है, पीछे प्रभु है । जो देह तथा इंद्रियां एवं मन का दास है वह पशु है, जो देहेन्द्रियों का स्वामी है वह पशु पति है ।

311– देह को शव कहते हैं आत्मा को शिव कहते है शव में शिव का उपासक ही सच्चा साधक है ।

312– 'विद्या बल धन रूप यश कुल सुत बनिता मान ।

सभी सुलभ संसार में दुर्लभ आतम ज्ञान ।।'

313– तुम जान लो, व्यर्थ क्या है ? अनर्थ क्या है ? सार्थक क्या है ? जगत में जितने शरीर हैं वह सब यात्री जीवात्मा के वाहन हैं । विरले ही कोई यात्रा वाहन द्वारा यात्रा कर रहे हैं शेष लाखों करोड़ों अपने अपने वाहनों में अटके हुए है और वाहनों की ही सेवा में लगे हुए हैं ।

314– पुष्प फल द्रव्य के द्वारा मूर्ति की पूजा करते हुए मन को सन्तुष्ट करने की अपेक्षा

जो कुछ शक्ति सम्पत्ति योग्यता सुलभ है उसको अपनी न मानकर, परमेश्वर की जानकर, जो प्राणी तुम्हारे सामने हों, उन्हें सन्तुष्ट करते रहो– इस प्रकार की पूजा से तुम्हे अद्‍भुत शान्ति का अनुभव होगा ।

315– तुम बाहर के पुष्पों को न तोड़कर अपने हृदय कमल को सदगुणों एवं सद्‍भावों से सुवासित होने दो । फल ही चढ़ाना हो तो अपने द्वार सत्कर्मो एवं सेवा के फल को मन रूपी पात्र सहित प्रभु के प्रति समर्पित करते हुए देखो परन्तु कर्ता न बनो ।

316– सतचर्चा, सत्कथा, गुरू प्रवचन में विचारों का चयन करो, आध्यात्मिक ज्ञान प्रकाश में आत्म देव अर्थात सर्व व्यापक महादेव का दर्शन करो और निष्काम होकर सर्वत्र उस महादेव के चमत्कारों की स्तुति करो ।

317- जिस पूजा में वाह्य वस्तु व्यक्ति की अपेक्षा हो उस पराधीनता को छोड़कर प्रत्येक के द्वारा सेवा भजन पूर्ण होने दो ।

318- जो सदा नहीं रहेगा उसे बनाये रखने का लोभ और जो अवश्य ही आयेगा उसका भय त्याग दो ।

319- ममता कामना रहते भय भेद संघर्ष कलह क्रोध से छुटकारा नहीं मिलता ।

320- कामना से, आसक्ति से, लोभ से, अभिमान से, क्रोध से अपने कर्तब्य की, स्वरूप की, लक्ष्य की, परमप्रभु की स्मृति नहीं रहा करती ।

321- जो व्यापक होता है अखण्ड होता है उसका कभी अभाव नहीं होता । उस व्यापक का चाहे जब चाहे जहाँ स्मरण करो, पूजा करो आराधना करो ।

322– भजन करने के लिए अनुकूल समय की राह न देखो । प्रत्येक क्षण को अनुकूल समझो । क्षण के पीछे ही शाश्वत का अनुभव हो सकता है ।

323– अनेकों विधियों को करते करते अन्त में विधियों को छोड़कर अपने भीतर डूबने को ध्यान कहते हैं ।

324– जो निरर्थक बोलते हैं, निरर्थक सुनते हैं, निरर्थक देखते हैं वह ध्यानावस्थित नहीं हो पाते ।

325– अपने भीतर परमात्मा को जिसने देख लिया उसे ही कण–कण में परमात्मा का दर्शन हो सका है ।

326– साधक जब तक ध्यान में कुछ देखने के लिए आतुर रहता है तब तक विचार उठते रहते हैं लेकिन अथक प्रतीक्षा में विचार शान्त

हो जाते हैं ।

327– साधना वही है जिसमें कुछ करना होता है ।

328– उपासना वही जिसमें कुछ करना नहीं होता, नित्य युक्त को देखता रहता है ।

329– भगवान कहीं नहीं है वह तो भक्ति के कारण प्रगट होता है भगवान, भक्त को नहीं, अपनी भक्ति को चाहता है ।

330– विनम्रता, पवित्रता, दीनता द्वार प्रभु का प्रेम प्राप्त होता है । जिस दिन अहंकार समाप्त होता है उसी दिन उपासना पूर्ण होती है ।

सन्यास की पूर्णता के लिए गुरू वाक्य

331– अनाश्रितः कर्म फलं कार्य कर्म करोति यः ।

स सन्यासी च योगी च न

निरग्निर्नचाक्रियः ।।

३३२– जो कर्म फल का आश्रय न लेकर कर्तब्य कर्म करता है वही सन्यासी है, योगी है। केवल अग्नि का, क्रिया का त्यागी सच्चा सन्यासी नहीं है ।

३३३– यह देह चलता हुआ दो पैरों वाला घर है, इसी में रहने वाला जीवात्मा पुरूष पाँच खिड़कियों से अगणित नामों रूपों एवं वेदनाओं को ग्रहण कर रहा है – जीवात्मा कर्म वश देह में स्थिति होने से ही गृहस्थ बन जाता है ।

३३४– जब देह का दृष्टा होकर अपने चेतन स्वरूप में स्थित होता है तब सन्यास आरम्भ होता है ।

३३५– जो कुछ दिखे वहीं परमात्मा के होने का स्मरण करना, रूप में अरूप को, दृश्य के

मूल में अदृश्य को जानते रहना सन्यासी का भजन है । जगदाकार, देहाकार, विषयाकार वृत्ति को ध्यान से देखना और उसी वृत्ति के सहारे उदगम अर्थात मूल की ओर लौटकर देह के हाड़ मांस को देखना और भीतर काम क्रोधादि विकारों को देखना, इसके पीछे सद्‌गुणों को देखना, और गहरे उतर कर गुणातीत परमात्मा को देखना यही सन्यासी का आत्म दर्शन है । सन्यासी सदा अभय है शान्त है स्वस्थ है आत्मस्थ है । गृहस्थ वही है जो भयातुर है, अशान्ति से घिरा है, अस्वस्थ है । क्योंकि देहस्थ है ।

336– परमात्मा अरूप है जब प्रेमी अरूप हो जाता है तभी पूर्ण मिलन होता है ।

337– जितनी देर 'मैं' को हटा दोगे उतनी देर परमात्मा प्राप्त ही दिखेगा । अहंकार ही उसके दर्शन में बाधक होता है ।

३३८- किसी भी शास्त्र एवं वेद के विद्वान में, पण्डित में, साधु, सन्यासी, मण्डलेश्वर, जगतगुरू में, तपस्वी में त्यागी साधक सिद्ध में जब तक अहंकार है तब तक उसे लोभ उसी भांति पकड़ेगा जिस भांति गज को ग्राह ने पकड़ा था । इस संसार सागर में करोड़ो अहंकार रूपी गजों को लोभ रूपी ग्राह ने ग्रसित कर रखा है । परमात्मा विष्णु की शरण से ही अहंकार रूपी गज नष्ट होता है । जहाँ संसार से सम्बन्ध है वहीं अहंकार है, जब केवल परमात्मा से योग होता है तब अहंकार समाप्त हो जाता है । जब प्रयत्न समाप्त हो जाता है अन्य किसी से सम्बन्ध नहीं रहता तब विष्णु परमात्मा की कृपा हो जाती है ।

३३९- मिटा दे अपनी हस्ती को अगर तू मर्तवा चाहे कि दाना खाक में मिलाकर गुले

गुलजार होता है ।

340– बीज मिट कर ही जो होना चाहिए वह स्वतः हो जाता है । अहंकार मिटने पर जो निरन्तर है वहीं परमात्मा रह जाता है । समर्पण में परमात्मा का अनुभव होता है ।

341– अनेकों भोगी भोगों से अथवा गृह कार्यो से थक कर घर परिवार धन भूमि को छोड़कर त्यागी बन जाते हैं परन्तु इस प्रकार बने हुए त्यागी सन्यासी मोह, लोभ, अभिमान अहंकार का त्याग नहीं कर पाते । जब तक कोई अपने को सन्यासी मानता है तब तक वह सन्यासी नहीं है और जब कोई व्यक्ति सांसारिक विचार नहीं करता तब तक संसारी नहीं है वह सन्यासी ही है ।

342– जिस व्यक्ति में धन भोग मान या नाम की वासना है वह सन्यासी साधु तपस्वी

बनने के कारण अधिक अहंकारी होते हैं ।

343- अहंकार ही धन, बल, विद्या, दान, तप, यश त्याग तथा सन्यास एवं गुरू, स्वामी पद का भोगी बनता है ।

344- जब तक सुख का लालच है, दुःख का भय है तब तक अशान्ति नहीं मिटती है ।

345- प्रभु-प्रेम में आनन्दित रहना ही उपवास है । विषयों का रसास्वाद लेना ही भोग है । भूखे रहना अनशन है ।

346- चिदाकाश का बोध होने पर केवल चेतन सत्ता रहती है मैं नहीं रहता ।

347- जिस प्रकार नेत्रों से भूताकाश में अनन्त दृश्य दिखते हैं उसी प्रकार भीतर चित्ताकाश में अनन्त दृश्यों में मन चन्चल रहता है ।

348- चित्ताकाश के ऊपर चिदाकाश है

आकाश को भी अवकाश देने वाला चैतन्य आकाश है वह अनन्त है उसका दर्शन–विन्दु में प्रवेश होने पर होता है । विन्दु में प्रतिष्ठित होने पर मन चित् शक्ति में लीन होता है ।

349– नाद बिन्दु कलातीत आत्मा है । आत्मा की सत्ता में ही मन रूप का गठन कर लेता है। मन में कल्पना को आकार देने की आविष्कार की, विचार की महान सामर्थ्य है ।

350– जो कलातीत है वही अशब्द, अरूप, निस्कल, निरंजन है, वही गुरू तत्व है ।

351– इस गुरू की शरण में ही मन से मुक्ति मिलती है । जब तक मन शिष्य नहीं हो जाता तब तक बन्धनों का अन्त नहीं होता । मन ऐश्वर्य के लिए ज्ञान के लिए आनन्द के लिए ही चन्चल है, यह संसार के सहारे कभी स्थिर होता ही नहीं ।

352– जो मन से रहित हो जाते हैं वही निरालम्ब हैं । बाहर के आकाश में क्रिया कर्म होते हैं, जन्म मृत्यु चलते है । भीतर चित्ताकाश में विचित्र चित्रों का आभास होता है । चिदाकाश में सत्य का दर्शन होता है, चिदाकाश ही परमात्मा है ।

353– संसार चक्र में भटक लेने पर परमात्मा में विश्राम का आनन्द मिलता है । खोने पर ही पता चलता है कि मेरे पास क्या था । परतन्त्रता के पश्चात स्वतन्त्रता का महत्व विदित होता है ।

354– आत्मा परमात्मा में ही आस्था श्रद्धा करो– यही एक मात्र सम्बल है । ज्ञान चक्षु खुलते ही दर्शन हो जाता है ।

355– दीपक की ज्योति बुझ जाती है मिटती नहीं वह जहां से आती है उसी में लीन हो

जाती है, इसी प्रकार देह रूपी दिये में चेतन ज्योति प्रकाशित होती है और उसी में लीन होती है । मिट्टी की देह मिट्टी में मिलती है, चेतन जीवात्मा परमात्मा में मिला रहता है क्योंकि वह दो नहीं हैं एक ही है । यह अद्वैत बोध सन्यासी को होता है ।

356- दिगम्बर अवधूत वही है जिसके भीतर मन चित्त विचार, आदि कुछ भी न हो, यही नग्नता है ।

357- सन्यासी वही है जिसे कहीं भी रक्षा की चिन्ता न हो ।

358- गृहस्थ वही है जो देहासक्त हो, जिसे रक्षा की चिन्ता रहती हो ।

359- जो गृह परिवार धन छोड़ता है वह गृहस्थ विरागी है । जो अज्ञान, ममता, आसक्ति, कामना छोड़ता है वही सन्यासी है

तुम जहाँ हो वहीं सन्यासी हो सकते हो ।

360– फल की इच्छा, संकल्प पूर्ति का प्रयत्न, अहंकार का विस्तार अथवा जटिलता– यही गृहस्थ जीवन है इस सबका त्याग ही सन्यास है ।

361– सन्यासी का वेष न बनाओ, तुम 12 घन्टे सन्यासी की भाँति निष्काम होकर फलाशा छोड़कर कर्म करो इसी प्रकार समय बढ़ाते जाओ । एक सप्ताह फिर एक महीना सन्यासी की भाँति कर्ता न बनकर दृष्टा होकर देखो, किन्तु प्रदर्शन से बचते रहो, इस प्रकार जीवन सन्यास हो जायगा ।

362– जो यश धन मान का भोगी है वह भले ही सन्यासी बना हो परन्तु हो नहीं सका है ।

363– जो सर्वत्र जड़ में चेतन को ही देखता

है, जो पदार्थों के मध्य परमात्मा को ही चुनता है, वह सन्यासी हंस है ।

364– जब सन्यासी हंस परम हंस पद में होता है तब उसे पूजा आराधना उपासना के लिये किसी सामग्री की पुष्प माला की मूर्ति मन्दिर की अपेक्षा नहीं रहती, वह, नमस्कार की भी अपेक्षा नहीं रखता । अपेक्षा में प्रायः शोक सन्ताप दुःख का आक्रमण होता है ।

365– जो देहादिक वस्तुओं का इन्द्रियों का स्वामी होता है वही सन्यासी है, जो इनका दास होता है आसक्त होता है वही गृहस्थ है ।

366– धन परिवार छोड़कर वेषधारी सन्यासी साधु सहस्त्रों हैं परन्तु सभी को आत्मवत जानकर वासना कामना अहंता ममता के त्यागी सन्यासी (भगवान कृष्ण के मतानुसार)

कोई बिरले ही होगें ।

367– वास्तव में सभी प्राणियों के भीतर रहने वाला आत्मा ही हंस है इसी हंस का जो उपासक है वही सन्यासी है । जो पर निन्दा से रहित है वह सन्यासी है ।

368– गुण के अभिमान में दूसरों की निन्दा करने वाले अहंकारी व्यक्ति सद गृहस्थ भी नहीं हो पाते ।

369– अहंकारी व्यक्ति साधु सन्यासी विनम्र सदाचारी, ऊपर से बन जाता है, परन्तु हो नहीं पाता । इच्छा छोड़ कर जो गृह में रहे वह सन्यासी है ।

प्रेम के विषय में गुरू वाक्य

370– प्रेम वहीं है जहाँ महत्वाकांक्षा, प्रसिद्धि की चाह नहीं है ।

371– प्रेम में पूर्ण समर्पण है, नम्रता है, तप

है, त्याग है, विनय है, करूणा है, हृदय में आनन्द होता है । तभी प्रकाश की भाँति प्रेम सभी को सन्तुष्ट करता है ।

372- प्रेम से भरे हृदय में पापों का प्रवेश नहीं होता ।

373- प्रेम ही प्राणी को पशु से प्रभु तक ले जाने में समर्थ है ।

374- प्रेम को प्रेमस्वरूप परमात्मा का जानकर प्रेम को ही देखो । स्वयं प्रेम के कर्ता न बनो ।

375- सब में एवं स्वयं में ईश्वरीय चेतना को देखने का अभ्यास बढ़ा लो ।

376- सिद्धि परम सिद्धि के लिये आस्था, विश्वास, श्रद्धा, उत्साह, धैर्य, साहस और प्रयत्न के पीछे परमात्मा की कृपा का अनुभव करो ।

३७७- मनुष्य रूप में किसी साधु सन्त के चमत्कारों को देखकर मन को उसमें न अटकने दो प्रत्युत चारों ओर जो कुछ भी दिखता है उसी में ईश्वर के चमत्कार का दर्शन करो ।

३७८- दूरदर्शी अथवा परिणाम दर्शी बुद्धि द्वारा तुम सेवा के तथा गुण विकास के एवं दान के अवसर पकड़ते रहो ।

३७९- जो मन, क्रोधादि से विषाक्त हो जाता है वही प्रेम से अमृत हो जता है ।

३८०- जब तुम प्रसन्नता के प्रयत्न नहीं करते हो तभी शान्त प्रसन्न रह पाते हो ।

३८१- जब तुम्हारा हृदय प्रेम से उल्लासित होगा तब धन गौरव सम्मान की चाह नहीं रहेगी ।

३८२- अचेतन मन में महत्वाकांक्षा संघर्ष

उत्तेजनायें वासनायें छिपी रहती हैं, संग के आघात से प्रगट होती हैं इस जन्म का प्रभाव चेतन मन में है, पूर्व जन्मों का प्रभाव भीतर अचेतन मन में है ।

383– तुम बुद्धिमान बनने के साथ ही भीतर मूढ़ता मुर्खता को जानों तब स्वतः बुद्धिमत्ता का उद्‌घाटन होगा । जीवन की कोई सीमा नहीं, वाह नहीं वह तो असीम है, अगाध है, विशाल साम्राज्य है, उसे शिक्षा एवं विद्या द्वारा समझने का प्रयास करो ।

384– केवल व्यवसाय तथा परिवार का भरण पोषण करते रहना मूढ़ता है, जीवन नहीं है ।

385– जहाँ जीवन है वहाँ ह्रास विनाश मृत्यु का भय नहीं है । जीवन अनन्त आनन्द है, प्रेम में ही उसका बोध होता है । जहाँ तक तुम दुखी होते हो वहाँ तक प्रेम में नहीं हो ।

आत्म समर्पण के लिये आत्म संयम को पूर्ण करो । अपने पास जो कुछ भी थोड़ा है उसमें ही सन्तुष्ट रहना, और अधिक के लिये न सोचना आत्म संयम है । प्रेम में ही आत्म संयम पूर्ण हो पाता है ।

386– पूज्य भाव, श्रद्धापूर्वक सेवा, दान, मान तत्परता से भक्ति सुलभ होती है ।

देखो ! तुममें क्या कमी है ?

387– प्रेम की किरण के सहारे प्रभु से आलोकित लोक तक साधक तभी पहुंच पाता है जब प्रेम के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहता । प्रेम के अभाव में ही मनुष्य दरिद्र होता है । भिखारी बना रहता है ।

388– प्रेम द्वारा किसी से सम्बन्ध जोड़ने से साधक रागी मोही बन जाता है किन्तु प्रेम जब स्वभाव हो जाता है तब साधक वीतराग

पद प्राप्त करता है । राग तो किसी के प्रति होता है परन्तु प्रेम सभी के प्रति लिखा रहता है ।

389- अहंकार न रहने पर प्रेम विकसित होता है । प्रेम में ही धर्म की पूर्णता होती है । जो कोई प्रेम मांगता है वह प्रेम देने में समर्थ नहीं होता । दो के रहते प्रेम तृप्त नहीं होता।

390- प्रेम से पूर्ण तृप्त है वही प्रेम बाँटता रहता है ।

391- प्रेम में, प्रेमास्पद निरन्तर निवास करता है ।

392- प्रेम की अन्तिम भेंट अहंता ममता से पूर्ण होती है ।

393- प्रेम देने से कभी घटता नहीं लेकिन प्रेम लेने से प्रेम की प्यास कभी बुझती नहीं।

394- पूर्ण प्रेम में कहीं बदले की चाह नहीं

होती और प्रेम के दान का ज्ञान नहीं रहता।

395– प्रेम में चिन्ता भय ईर्ष्या का प्रवेश नहीं होता ।

396– प्रेम को मांगो नहीं, देते ही रहो और जब कोई तुम्हारे प्रेम को स्वीकार कर ले, उसका अपने ऊपर अनुग्रह मान कर धन्यवाद दो ।

397– जहाँ भरपूर प्रेम प्रकट है वहीं परमात्मा का योग सुलभ है ।

398– समग्र की सत्ता और स्वयं की सत्ता से एकता एवं अभिन्नता में ही प्रेम की व्याप्ति बढ़ती है ।

399– असीम होकर जो प्रेम है सीमित होकर वही राग है ।

400– प्रेम मुक्ति है, राग में बन्धन है । राग, असीम होने पर प्रेम हो जाता है ।

401- अधोमुखी प्रेम नीचे उतर काम बन जाता है । काम ऊपर उठते-उठते जड़त्व की सीमा पार करते ही प्रेम हो जाता है ।

402- जब प्रेम का श्रोत नहीं खुलता तब जीव रोगों से ग्रसित हो जाता है ।

403- मनुष्य को जो कुछ भी श्रेष्ठ एवं सुन्दर मिला है वह सब प्रेम से ही मिला है । प्रेम का अभाव सर्वोपरि दरिद्रता है ।

404- ऊर्ध्वमुखी काम ही जब प्रेम हो जाता है तब ब्रम्हचर्य पूर्ण होता है । परिवार से ही प्रेम की ऊर्ध्वगति होती है परमात्मा में ही प्रेम पूर्ण होता है ।

405- जब अहंकार नहीं रहता तब प्रेम परमात्मा-मय हो जाता है । प्रेम के बिना ज्ञान, आनन्द प्रद नहीं होता ।

406- अपना कुछ भी न मानकर अहंता,

ममता, आसक्ति कामना का त्याग करना ज्ञान मार्ग है । सभी को परमात्मा की आत्मा जानकर सभी के प्रति, जड़ पदार्थों के प्रति भी प्रेम से भरे रहना भक्ति मार्ग है ।

407– प्रेम अथवा भक्ति के पथ में जो अतिशय सहन करता है वही सन्त है ।

408– प्रत्येक प्राणी परमात्मा की चैतन्य किरण है ।

409– अपनी ओर से सभी के प्रति प्रेम भावना दृढ़ करो तभी–ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध से छुटकारा मिलेगा ।

410– धन निर्धन दोनों को प्रेम से देखो, सजग रह कर देखो कि सब अपने ही समान आत्मा हैं ।

411– जो कुछ भी घटित हो उसे प्रभु के विधान से निश्चित समझ कर स्वीकार करो ।

412- अहंकार ही हर्षित शोकित रागी मोही त्यागी बनता है । अहंकार जब प्रभु के प्रति समर्पित होता है तभी आनन्द का श्रोत खुलता है ।

413- स्वरूप प्रतिष्ठा में ही आनन्द है । आनन्द से छके हृदय में किसी भी संयोग सुख की चाह नहीं रहती । चाहरहित सन्त ही प्रेम की वर्षा करते हैं ।

414- प्रेम से बढ़कर कोई सामर्थ्य नहीं शक्ति नहीं क्योंकि प्रेम किसी से भी पराजित नहीं होता ।

यह परम गुरू भगवान के वाक्य है :-

415- जो सब ओर निरपेक्ष हो गया किसी की परवाह नहीं करता किसी भी कार्य या फल आदि की आवश्यकता नहीं रखता और अपने अन्तःकरण को परमात्मा में ही अर्पित

कर चुका है, परमात्मा स्वरूप प्रभु उसकी आत्मा के रूप में स्फुफिल होने लगता है । तब उसे अलौकिक सुख का अनुभव होता है ।

416- जो ममता रहित है, लोभ रहित है, अकिन्चन है, संयमी है, समता में दृढ़ है उस योगी के लिए सभी दिशा आनन्द मय दिखती है ।

417- तुम अपने दुःख का कारण अन्य कुछ भी न मानकर अज्ञान को ही जाने रहो । आत्मा के ज्ञान से ही दुःख का अन्त होता है ।

418- आत्मा के अतिरिक्त तुम्हारा हृदय संसार में सब कुछ पाकर भी तृप्त सन्तुष्ट न हो सका है न कभी होगा ।

419- समग्र हृदय से तुम दृढ़ निश्चय कर

लो कि परमात्मा के अतिरिक्त मुझे कुछ भी नहीं चाहिए, तभी तृप्ति शान्ति सुलभ होगी ।

420- जो ज्ञान में जाग कर समग्र प्रेम से देखते हैं ।

421- सत्य ही सर्वत्र है परन्तु जो स्वप्न में हैं उन्हें नहीं दीखता है । उन्हें परमात्मा ही सर्वत्र दीखने लगता है ।

422- जागने पर भीतर दैवी शक्ति मिलते ही संसार की दासता मिट जाती है । प्रेम ही एक मात्र सम्पदा है ।

423- जीवन के प्रति जागो, जहाँ आत्म बोध है, वहाँ जीवन ही जीवन है, परमात्मा ही परमात्मा है ।

424- कल्पना को ध्यान नहीं समझ लेना, आत्मा मनुष्य की कल्पना नहीं है । कल्पना जब नहीं रहती तब ध्यान आरम्भ होता है ।

कल्पना में लोग वही देखते हैं जो देखना चाहते हैं, वह दर्शन नहीं है ।

425- अहं शून्य हो तो पूर्ण हो जाता है, या फिर पूर्ण हो तो शून्य हो जाता है । शून्य होना निर्वाण की दिशा है और ब्रम्हारमैक्यता है ।

426- शंबर के ब्रम्ह का नाम शून्य है और बुद्ध के शून्य का नाम ब्रम्ह हैं, जब यह समझ में आ जायेगा तब ना ही कुछ खोजना है, न पाना है, ना ही कहीं जाना है । स्वयं का जो अस्तित्व है वही आत्मा है । विचार के घेरे से मुक्त होकर चेतना असीम हो जाती है तभी असीम का बोध होता है ।

427- यदि तुम सुयोग्य माता पिता शिक्षक धर्मोपदेशक हो तो सुनने वालों को ऐसी शिक्षा दो जिससे अन्धविश्वास का ज्ञान हो, शोक,

ममता, आसक्ति के दुष्परिणाम का पता लगे, और विनाशी अविनाशी जीवन का बोध हो ।

428- तुम स्वयं ही अपनी मुक्ति के लिये क्षण-क्षण के पीछे शाश्वत जीवन को जानो । भविष्य के सम्बंध में व्यर्थ न सोचो चिन्ताओं के बोझ को उतार कर वर्तमान में अनन्दित रहो ।

429- कल्पना रहित होकर तुम क्षण-क्षण के पीछे पूर्ण की अनुभूति कर सकते हो ।

430- जीवन के सर्वोत्कृष्ट विकास में ही सत्य परमात्मा की जिज्ञासा प्रबल होती है और प्रेम का दान, स्वभाव बन जाता है ।

431- जीवन का सत्य मिला ही हुआ है, अनित्य की स्मृति से खोया सा प्रतीत होता है।

432- नेत्रों द्वारा जो अखण्ड और अनन्त रूप

अनुभव में आ रहे हैं उसमें उसी परमात्मा का जीवन, जीव रूप में विद्यमान है तुम देखो, अनुभव करो ।

433– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश मन, बुद्धि, अहंकार और जीव– यह सब तत्व मय देह, परमेश्वर की देह है ।

434– तुम परमात्मा पुरूष का योगानुभव रूप में दर्शन करो तब प्रकृति कुछ न कर पायेगी ।

435– मन की दुर्बलता को ईश्वर आराधना सत्संग प्राणायाम से दूर कर सकते हो ।

436– तुम्हें आनन्द प्राप्त करना है वह तो स्वरूप ही है । शांति, स्वरूप ही है ।

437– मन को आत्मा में बार–बार स्थिर करो । बिना प्रयास के जागरूक बने रहना शाँति आनन्द की अवस्था है ।

438– ‘‘मैं हूँ’’ यही साक्षात्कार है ।

439– वायु से मन उत्पन्न होता है । तेज से बुद्धि उत्पन्न होती है । जल से चित्त (स्मरण) और पृथ्वी से अहंकार उत्पन्न होता है । तुम्हें अपने आप को श्रोत में विलीन करना है ।

440– जीवन के सागर में तूफान सदा बने ही रहते है । यदि आत्मा आदर्श न हो तो तूफानों में टूटना ही निश्चित है ।

441– यह मन सब कुछ जानता चाहता है लेकिन सद्ज्ञान उन्हीं को उपलब्ध होता है जो इस मन को जान लेते हैं ।

442– मनसैवानुदृष्टवयं नेह नातास्ति किन्चन (श्रुति) – मन के पीछे मूल में देखो वहाँ किन्चित भी अन्य कुछ नहीं है केवल आत्मा ही है ।

443– विचार न हो तब मन शान्त हो जाता

है । मन जहाँ शान्त होता है वहीं मन की उत्पत्ति है । मन के पीछे स्वयं को पा लेना, सत्य को पा लेना है ।

444– ज्ञान ही स्वयं का चक्षु है इसमें दूसरी आंखों की अपेक्षा नहीं रहती । ज्ञान चक्षु से ही अनेक में एक का दर्शन होता है ।

445– तुम भीतर प्रेम की गहराई बढ़ने दो तभी तुम्हारे जीवन में मानवता शिखर पर पहुंच सकेगी ।यदि धन मान में उठना चाहोगे, तब तो मानवता नीची ही रहेगी ।

446– नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोस्तुते सर्वतएवसर्य ।।

अनन्त वीर्यामित विक्रमस्त्वं सर्व समाप्रोषि ततोसि सर्व ।।

हे सर्व तुम्हें सामने से पीछे से नमस्कार है सभी ओर से तुम्हे नमस्कार है । हे अनन्त

वीर्य तुम्हारा पराक्रम अतुलनीय है तुम सबको सम्यतया प्राप्त होते हो इसलिये तुम्ही सर्व हो ।

447– गुरु निर्देश है कि अनन्त ब्रम्ह को आत्मा के रूप में नमस्कार करो । ब्रम्ह आत्मा से भिन्न नहीं है ।

448– मानव वही है जो अनेकों प्रकार की स्वभावानुसार सिद्धि और अन्त में संसिद्धि चाहता है ।

449– सिद्धि संसिद्धि के लिये ही मानव को देह, इन्द्रियां मन तथा बुद्धि आदि साधन सुलभ हैं । साधन का सदुपयोग करनेवाला मानव ही साधक है । साधनों के द्वारा ही मनुष्य भोगी बना है, साधनों के सदुपयोग से ही योगी हो सकता है । जो देह की, इन्द्रियों को, मन तथा बुद्धि को कार्य सिद्धि के लिये

साध लेता है वही साधु है । जो साध नहीं पाता वही असाधु है ।

450– जो मनुष्य अपने मन की ही पूर्ति चाहता है, किसी विद्वान की सम्मति सुनता ही नहीं वह मूर्ख अपने विचर नहीं बदलता । जो मनुष्य यथार्थ बात सुनता समझता है परन्तु आचरण मं नहीं ला पाता, वह मूढ़ है, अथवा जो देह में, धन में, परिवार के सम्बन्धित जनों के आसक्त रहता है, वह मूढ़ है ।

451– मूढ़ मनुष्य सम्यकदर्शी, यथार्थदर्शी, सत्यदर्शी परिणामदर्शी नहीं होता क्योंकि उसका मन वस्तुओं में अथवा व्यक्ति से मिलने वाले सुख में अटक जाता है ।

452– गुरू विवेक द्वारा ही मूढ़ता का अन्त सम्भव है । मूढ़ता वश ही प्रायः साधक सत्य को नहीं, सन्तोष को खोज रहा है । साधक

शान्ति, मुक्ति, भक्ति प्राप्ति के लिये अपनी मान्यतानुसार कीर्तन–पाठ, जप–पूजा, योगाभ्यास आदि जो कुछ भी साधना करता है उससे नित्य सन्तोष कर लेता है, इसीलिये शान्ति, मुक्ति तथा भक्ति के लिये जो कुछ तप त्याग होना चाहिये वह नहीं हो पाता ।

453– सन्त के निर्णय से यह भी ज्ञात हो सका कि साधक में प्रायः कुछ थोड़े तप का, त्याग का अथवा ज्ञान का अहंकार बढ़ जाता है, परन्तु अहंकार का ज्ञान नहीं हो पाता ।

454– जो अपने लक्ष्य से अथवा प्रभु से विमुख बना दे वही पाप है । जिससे पतन हो वही पाप है ।

455– समस्त पाप अहंकार में, अभिमान अज्ञान के आश्रय से पुष्ट होते हैं ।

456– निर्विचार से निर्मलता आती है । आत्मा

की समीपता आती है ।

457- साक्षी भाव से मौन रहने का अभ्यास बढ़ाइये ।

458- स्वयं का मिटना ही शून्य होना है ।

459- अहंकार शून्य होने पर प्रेम के पूर्ण होने पर स्वयं और प्रभु के बीच की दूरी मिट जाती है ।

460- सारी उन्नतियों का अन्त पतन है ।

461- सम्पूर्ण संग्रहों का अन्त विनाश है ।

462- समस्त संयोगों के आदि अन्त में दुःख है ।

463- स्वयं के चतुर्दिक जो अखण्ड सत्ता है वही ब्रम्ह है ।

464- अपना स्वरूप परमानन्द परमात्मा है ।

465- अपनी निर्विकार चेतना ही चिन्मय ब्रम्ह है ।

466– परमात्मा एक है विभूतियां अनेक है, अगणित हैं ।

467– सदगुणों के विकास में प्रीति पूर्वक श्रद्धा सहित सेवा करना अत्यन्त आवश्यक है।

468– सदभाव के विकास में मूर्ति पूजा सहायक है । परन्तु प्रेम भाव से रहित मूर्ति पूजा पत्थर की ही पूजा है ।

469– हमें समझाया गया है कि अज्ञान में मानव सत्य को नहीं बल्कि सन्तोष को ही खेज रहा है । अनेक साधक कुछ जप की संख्या पूरी करके कोई संकीर्तन के पाठ की अवधि पूरी करके, कोई तीर्थ यात्रा करते हुए, को पर्व स्नान तथा व्रत अनुष्ठान करके सन्तुष्ट होते रहते हैं । परन्तु आनन्त का अनुभव शान्ति की प्राप्ति तथा मुक्ति भक्ति नहीं पा रहे हैं ।

470– यदि तुम सत्य के प्रेमी हो, सच्ची जिज्ञासा है तो सत्य की अनुभूति जब तक न हो, यथार्थ बोध जब तक न हो, तब तक जप करते हुए कीर्तन, पाठ, पूजा, तीर्थ यात्रा तथा विविध अनुष्ठान एवं तप व्रत करते हुए सन्तोष न करो ।

471– जब तक नित्य निरंतर प्राप्त सत्य परमात्मा का संग अनुभव न होने लगे तब तक वाह्य प्रवचन, कथा, व्याख्यान रूपी सत्संग से सन्तोष न करते रहो ।

472– जब तक आत्म–ज्ञान में परमात्मा से अभिन्नता का अनुभव न होने लगे तब तक वेद, शास्त्र की जानकारी को ज्ञान मान कर सन्तुष्ट न बनो ।

473– हमें यह भी समझाया गया कि परमत्मा के साकार रूप में अनुपम सौन्दर्य,

अगाध माधुर्य अथवा अजेय ऐश्वर्य के सम्बन्ध में पढ़–सुनकर जिस प्रकार ध्यान करते हो यह ध्यान नहीं है – यह तो सुने हुए के अनुरूप विचार है ।

474– ध्यान किया नहीं जाता, ध्यान से देखा जाता है । जिस प्रकार किसी यन्त्र को, किसी बहुमूल्य वस्तु को किसी मनोहर रूप को तुम ध्यान से देखते हो– उसका ध्यान नहीं करते हो, उसी प्रकार जे कुछ अहंकार के भीतर है तथा जो कुछ अहंकार के बाहर है, जिस आश्रय में अहंकार ''मैं'' और ''मेरा'' की सीमा से आबद्ध हो रहा है उसे ज्ञान में देखो ध्यान में ठहरो । ज्ञान में देखने के लिये करना कुछ नहीं है केवल शान्त होना है, शून्य होना है असंग होना है और ज्ञान में देखने के लिये ध्यान में जाग्रत रहना है । ध्यान ज्ञान में ही जाग्रति है अज्ञान में निद्रा है स्वप्न है

। जो स्वप्न में है निद्रा में है अज्ञान में है वही अहंकार है अहंकार लोहे की दीवाल से भी अधिक कठोर है अहंकार जब ज्ञानी तपस्वी त्यागी बन जाता है तब और भी घातक बन जाता है । अहंकार ही हिंसक है ।

475- अहंकार भयानक रोग है यही प्रभु का विरोधी है । अहंकार के भीतर जितना कुछ एकत्रित है उतना ही यह सबल है । अहंकार में ही सारी दौड़ भाग है ।

476- अहंकार सदा से दरिद्र है भिखारी है, यह मांगता ही रहता है, यह संसार में बहुत कुछ पाकर भी रंक है, रिक्त (खाली) है वाञछा युक्त ही है । अज्ञान में ही अहंकार का जीवन है ।

477- हमें यह भी बताया गया है कि मनुष्य पाप में नहीं है - अज्ञान में है । अज्ञान की

निवृत्ति ज्ञान में होती है स्वयं को न जानना ही एक मात्र मानव का दुःख है । दुःख का अन्त आत्मज्ञान में होता है । मनुष्य के कष्ट अनेक हैं पर दुःख एक ही है । कष्टों के कारण ही मनुष्य अनेक प्रकार की सुविधायें चाहता है । सुविधा से कष्ट दूर हो जाता है परन्तु जीवन का दुःख निवृत्त नहीं होता । कष्टित व्यक्ति को अनुकूल सुविधा से सुख प्राप्त होता है पर शान्ति नहीं मिलती ।

478– साधक को यह न खोजना चाहिये कि शान्ति कहां मिलेगी प्रत्युत यह जान लेना चहिये कि भीतर अशान्ति क्यों है ।

479– जहां सुखोपभोग की तृष्ण है, लोभ है, द्वेष है, देहाभिमान है वहीं अशान्ति है ।

480– ज्ञान में देखते हुए जो साधक अहंकार से, ममता तथा कामना से रहित होता है वही

शान्ति में होता है ।

481– परमात्मा नित्य निरन्तर प्राप्त है इसीलिये जो परमात्मा के लिये उपस्थित है उसी को परमात्मा नित्य उपस्थित अनुभव होता है ।

482– प्रायः हम अनेक साधक धन के लिये, मान के लिये, संयोग भोग के लिये उपस्थित रहते हैं । परन्तु परमात्मा के लिये जहां उपस्थित होना चाहिये वहां उपस्थित नहीं होते ।

483– परमात्मा की अनुभूति स्वयं में शान्त होने पर ही होती है । जो स्वयं में है वही स्वस्थ है । जो अपनी प्रसन्नता किसी अन्य वस्तु–व्यक्ति पर निर्भर करता है वही परतन्त्र है । जो किसी अन्य का आश्रय नहीं लेता वही परमाश्रय को प्राप्त देखता है ।

484– इन्द्रिय दृष्टि जगत दृष्य के आगे नहीं जा सकती । बुद्धि दृष्टि से परिणाम देखा जाता है । स्वयं को जान लेने पर सत्य को जाना जाता है ।

485– यथार्थ दर्शन ज्ञान रूपी प्रकाश में अन्तर दृष्टि द्वारा, दिव्य दृष्टि द्वारा होता है । जो प्रीति पूर्वक परम प्रभु का भजन करता है उसे प्रभु बुद्धि योग प्रदान करते हैं । परम प्रभु को अपना जान करके और जगत के सभी प्राणियों को प्रभु का मान करके, प्रभु के नाते सभी का हित चाहना, यथा–शक्ति सभी की सेवा में सावधान रहना भजन है । प्रभु के नित्य सम्बन्ध को भूले रहकर संसार के सम्बन्धियों से अपनत्व का नाता जोड़े रहकर जप, कीर्तन, पूजा पाठादि रूप में भजन भी योग है ।

486– प्रायः हम लोग वेद–शास्त्र पढ़ने वालों

को पण्डित मानते हैं, परन्तु भगवान के मत में वही पण्डित है जो शोक मोह से रहित है ।

487– भगवान के मत में जो इन्द्रियों के विषय सुख में आकर्षित नहीं होता वही धीर है। जो अहंता ममता फलासक्ति का त्यागी है वही सन्यासी है । घर छोड़ने वाला, अग्नि न छूने वाला सन्यासी नहीं है ।

488– जो संगासक्ति से रहित है, वही मुक्त है, जो भगवान को अपने से निरन्तर अभिन्न अनुभव करता है वही भक्त है ।

489– भगवान के मतानुसार जो सांसारिक वैभव सुखों में आकर्षित नहीं होता, वही विरागी है । जो सदा से प्रेम करने वाले भगवान को सर्व भावेन प्रीतिपूर्वक अपना मानता है वही अनुरागी है । जो कर्तव्य

पालन में, स्वधर्म पालन में सेवा व्रत में आने वाली प्रतिकूलताओं को धैर्यपूर्वक सहन करता है वही तपस्वी है । जिस पर सांसारिक संयोग–वियोग, लाभ–हानि, मान–अपमान का प्रभाव नहीं पड़ता, जो समस्थित है शान्त है वही नित्य युक्त योगी है ।

490– हमें यह भी समझाया गया है कि अज्ञान में शान्ति के लिये किया गया प्रयत्न अशान्ति में ही ले जाता है । अभय के लिये किया गया प्रबन्ध भय में ही ले जाता है । रक्षा के लिये लिया गया आश्रय सुरक्षित नहीं रख पाता । अज्ञान में स्वस्थ रहने के लिये किया गया भोजन रोगी बना देता है । सुखी रहने के लिए की गई सारी व्यवस्था दुःख में ही ले जाती है ।

491– अज्ञान में किया हुआ सम्मान अभिवादन अर्थात प्रणाम अपराध बन जाता है

।

492- अपने गुरू जनों को, बड़ो को समयानुसार कभी दण्डवत प्रणाम करो कभी मस्तक झुकाकर, कभी चरणस्पर्श करते हुए प्रणाम करो, कभी दूर से ही हाथ जोड़कर और कभी मन ही मन प्रणाम कर लो ।

493- जब कभी बड़ी सभा में गुरूदेव बैठे हों या कथा प्रवचन कर रहे हों अथवा किसी सवारी में बैठकर यात्रा कर रहे हों तब चरणस्पर्श करना, निकट जाकर प्रणाम करना अपराध होगा ।

494- जिस अभिवादन से, प्रणाम से उन्हें बाधा हो अथवा कथा प्रवचन में विक्षेप हो श्रोताओं की एकाग्रता में बाधा हो वह अभिवादन अथवा प्रणाम कदापि न करो । दूर से ही मस्तक झुका दो मन ही मन प्रणाम

कर लो ।

495- अज्ञान में की गई पूजा स्तुति सेवा भी अपराध बन जाता है इसीलिये गुरू निर्देश है कि तुम ऐसी पूजा प्रार्थना पाठ अथवा साधना पद्धति का पक्ष छोड़ दो जिससे दूसरों के सुख में तथा सुविधा में बाधा पड़ती हो ।

496- किसी मन्दिर में साधक मौन होकर ध्यान में शान्त होना चाहता है, वहीं पर दूसरा साधक उच्चास्वर से पाठ करने लगता है तीसरा साधक घन्टा बजाने लगता है, चौथा साधक ऊच्चास्वर से नाम कीर्तन करते हुये नाचने लगता है- यह सब अविवेक पूर्वक अपने अपने अहंकार को तृप्त करने की पद्धतियां हैं, साधनायें हैं । जो विवेकी साधक हैं वे दूसरों की सुविधा का ध्यान रखकर प्रत्येक कर्म करते हैं ।

497- हमें समझाया गया है कि तुम सामूहिक प्रार्थना करो । किसी के साथ समस्वर से ग्रन्थ मन्त्र पाठ करो, परन्तु कहीं पर ऐसा न बोलो, ऐसा न हंसो, उस प्रकार न चलो, न बैठो न उठो जिससे दूसरों को कष्ट हो ।

498- किसी से मिलो तो उसकी मनः स्थिति का अध्ययन कर लो, उससे समय लेकर मिलो, जितना समय लिया हो उससे अधिक न बैठो, यदि वह स्वयं ही तुम्हारी उपस्थिति चाहता हो तो रूको किन्तु तुम दूसरों को अपनी प्रसन्नता के लिये अपने पास बैठाना चाहते हो तो उसकी मनःस्थिति समझ लो तभी अपनी अनुकूलता की पूर्ति करो। दूसरों से सम्बन्धित जो कुछ भी करो उसमें दूसरे की अनुकूलता का तथा हित का पक्ष लेकर करो ।

499- जिस कर्म का सम्बन्ध अपने प्रभु से

हो उस साधना, उपासना, आराधना में प्रभु की आज्ञा का ही पालन करो ।

500– किसी कर्म का सम्बन्ध अपने आप से ही हो तब अपने हित का ध्यान रख कर ही प्रत्येक कर्म करो । किसी को भोजन कराना है तो उसकी रूचि का पक्ष लेकर भोजन कराओ । किसी के घर जाना हो तो अपनी प्रसन्नता के लिये न जाओ उसकी रूचि देखकर जाओ उसकी परिस्थिति मन की स्थिति का अध्ययन करते हुए किसी के यहाँ जाओ अपने सन्तोष के लिये किसी के समीप बैठकर समय न काटो तुम्हारे बैठने से दूसरों को प्रसन्नता होती है तभी बैठो तुम्हारी बातें उसे प्रिय लगती हों तभी बात करो तुम्हारा हास्य दूसरों को प्रिय लगता है तभी हँसों ।

501– यदि तुम्हारी पूजा से पूज्य प्रसन्न नहीं होता तो ऐसी पूजा भी न करो । तुम्हारे हार

पहनाने से पूज्य की शोभा बढ़ती है तो हार पहिनाओ, चन्दन तिलक लगाओ, यदि तुम्हारे हारों से, चन्दन से तिलक से शोभा बिगड़ती है तो कदापि ऐसी पूजा न करो ।

502– जिसका अन्तःकरण अशुद्ध है वह अभिमानी अहंकार ही नर्क का दुःख भोगता है। अहंकार को ही अज्ञान में हानि से, अपमान से, वियोग से मृत्यु से भय लगता है ।

503– कर्म योग बिना अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती जिस कर्म के पीछे फल–भोग का लालच नहीं रहता, जो प्रभु के नाते प्रभु की दया से मिली हुई देहादिक वस्तु एवं शक्ति द्वारा परहित भाव से किया जाता है वह कर्म योग का साधन हो जाता है । निष्कामता से ही कर्म योग की सिद्धि होती है ।

504– लोभी, अहंकारी, महत्वाकांक्षी, सुखासक्त कर्मयोगी नहीं हो पाता, वह कर्म भोगी बना रहता है ।

505– जितन छोड़ा जाता है उतना ही मुक्ति मिलती जाती है, जितना लिया जाता है उतना ही बन्धन बढ़ता जाता है ।

506– निष्काम होकर सर्वहितकारी प्रवृत्ति में धर्म की पूर्णता है । धर्म की पूर्णता में योग पूर्ण होता है । योग की पूर्णता में सत्य का बोध होता है । बोध की पूर्णता में प्रेम पूर्ण होता है ।

507– जो मिले हुए बलों का दुरूपयेग न करके सेवा में सदुपयोग करता है वही पूर्ण धर्मात्मा होता है । सांसारिक नाम रूप तथा सुख में आसक्ति रहने तक धन पूर्ण नहीं होता क्योंकि मन अशुद्ध रहता है ।

508– भगवान का निर्णय है कि जो साधक किसी से द्वेष नहीं करता, सभी के प्रति मित्र भाव रखता है, जिसका हृदय करूणा से युक्त है, जो ममता अहंता रहित है, जो प्राप्त में सन्तुष्ट है, जो आत्मा से युक्त है, जिसने मन बुद्धि को मुझ परमात्मा में अर्पित कर दिया है, जो शुभ अशुभ फलों का त्यागी है जो शोक से कामना से रहित है, जो सम शान्त रहता है जो किसी की अपेक्षा नहीं रखता, पवित्र रहता है कार्य करने में दक्ष है जो व्यथित नहीं होता है, जिसकी मति चन्चल नहीं है ऐसा भक्त मुझे प्यारा है ।

509– जो दूसरों को दुखी करता है जो मान से उन्मत्त हो जाता है अपमान से अशान्त होता है नयी–नयी योजनायें बनाता है, जो असन्तुष्ट रहता है, भय, क्रोध, लोभ से जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती, जो पक्षपाती

है, दुखी होता रहता है, द्वेष करता है, जो मोही है वह परम प्रभु के प्रेम का अधिकारी नहीं हो सकता । भोग की रूचि का अन्त होने पर योग सिद्धि मिलती है । जिससे योग होना है वह अपने से भिन्न नहीं है, अपने में ही है, अभी है, वहीं है, जहां हम हैं ।

510- हम जहाँ है, जिस परिस्थिति में हैं उसमें तृप्त न होने से अशान्त हैं । हम कुछ पाना चाहते हैं, किसी अन्य जैसा होना चाहते हैं इसीलिये अशान्त हैं ।

511- शान्ति के लिये हम जितनी दौड़ भाग कर रहें हैं, जितने प्रयत्न कर रहे हैं उतने ही अशान्त हैं । हम उसे अपना मानते हैं जिस पर अपना स्वतन्त्र अधिकार नहीं है, उसी के छिन जाने के कारण अथवा स्वेच्छानुसार न मिलने के कारण अशान्त है ।

512– कभी कभी किसी स्वच्छ उपवन में अथवा पवित्र तीर्थ स्थल में किसी गिरि गुहा में या मनोहर दृश्य–दर्शन में कुछ समय तक चित्त एकाग्र होता है तब उसे हम शान्ति मान लिया करते हैं । परन्तु जो किसी वस्तु के द्वारा व्यक्ति के द्वारा मिलती है वह शान्ति नहीं है ।

513– शान्ति तो शाश्वत है सत्य में है बाहर नहीं अन्तर मैं ही है, वह ग्रहण में नहीं सर्व त्याग से ही सुलभ होती है । पर में नहीं स्वयं में ही है ।

514– हमें सावधान किया गया है कि इस देह रूप ढांचे के भीतर 'मैं' है खोज करो । 'मैं' की खोज में परमात्मा की सत्ता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा ।

515– जीवन ही तो परमात्मा है । जीवन के

बीच में जन्म मृत्यु की गति है । जन्म मृत्यु से जीवन ग्रसित नहीं है । चन्चल मन के पीछे ही स्थिर चिन्मात्र सत्ता है, वहीं आत्मा है विनासी के पीछे ही अविनासी है ।

516- अन्धकार के पीछे ही प्रकाश है ।
विषाक्त परिस्थिति के पीछे अमृत है ।
मृत्यु के पीछे ही अमरत्व है ।
जड़ के पीछे ही नित्य चेतना है ।

517- अज्ञान में मोही मनुष्य अपनी मानकर भोगता है । त्यागी अहंकार, अपनी मानकर छोड़ता है ।

518- ज्ञान में सावधान साधक प्रभु की जानकर देखता है । प्रेम में परितृप्त भक्त प्रभु के अतिरिक्त न कुछ मानता है न जानता है ।

519- जो अहंकार से शून्य है वही प्रेम से

पूर्ण होता है । स्वयं और प्रभु के मध्य दूरी मिट जाना ही प्रेम है ।

520- हमें गुरू प्रवचनों से ज्ञात हो सका कि ब्यापक सत्य परमात्मा को जनने के लिये शान्त होना, शून्य होना आवश्यक है । पूर्ण मौन में जो शेष रहता है, जो नित्य निरन्तर है वही परमात्मा है ।

521- घर परिवार छूटने पर भी विचार तथा बीती हुई घटनाओं की स्मृति से छुटकारा नहीं मिलता । अतः विचारों का त्याग ही त्याग है । अहंता ममता का ही त्याग शान्तिदायी त्याग है ।

522- विचारों के प्रति साक्षी होने पर स्वतन्त्रता सुलभ होती है सभी प्रकार के भावों के प्रति साक्षी होने पर सरलता आती है ।

523- अभिमान शून्य होने पर, शान्त रहने

पर केवल चैतन्य स्वरूप में बुद्धि में स्थिर होने पर ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं ।

524- विचारों, वृत्तियों को छोड़कर चेतना में प्रतिष्ठित होना ध्यान है । चेतना के द्वारा ही विचारों का प्रवाह दीखता है । प्रवाह के दृष्टा होकर चेतन में स्थित होना है । मनुष्य के भीतर ज्ञान ही इसका स्वरूप है ।

525- हम सबके सामने जहां तक बन्धन है, कष्ट है जहां कहीं हम भ्रमित हैं, अनाचारी हैं, व्याभिचारी हैं, जब तक हम दुख से घिरे हैं तब तक अज्ञान में ही हैं ।

526- हमें दिखाया गया है कि प्रायः अज्ञानवश मनुष्य बाहर से परिचित है भीतर से अपरिचित है । किसी वृक्ष की शाखा पल्लव से परिचित है, जड़ों से अपरिचित है । दृश्य से परिचित है, अदृश्य से अपरिचित है ।

अज्ञान में ही मनुष्य धन लाभ को देखकर हर्षित होता है । अन्तर में बढ़ने वाले लोभ को नहीं देख पाता । संयोग भोग से सुखी होता है पर परिणाम में मोहासक्ति को नहीं देख पाता । मोहासक्ति के रहते मनुष्य दुख से नहीं मुक्त होता । कुछ पाने की तृष्णा के रहते मोह नहीं मिटता, किसी प्रकार के मोह रहते तृष्णा नहीं मिटती । और वस्तु के प्रति अपनत्व के रहते लोभ नहीं मिटता है । लोभ, तृष्णा और मोहादि विकारों से मुक्त हुए बिना प्रभु के प्रति प्रेम पूर्ण नहीं होता ।

527- असत् के संग से देहाभिमान की उत्पत्ति होता है असत् संग के कारण ही मानव सत्संग से विमुख हुआ है । राग से काम, काम से भोगेच्छा, भोगेच्छा से तृष्णा, तृष्णा से लोभ बढ़ता जाता है ।

528- असत् अनित्य विनाशी जड़ का ज्ञान

जिससे होता है वही सत् है, अविनाशी नित्य चेतन परम तत्व है । सत्य परमात्मा से विमुख होने के कारण भेद भिन्नता और भयवश मानव संघर्ष से सन्तापित है ।

529- सत्संग से विवेक प्राप्त होता है । विवेक से ही प्रकृति पुरुष, पुरुषोत्तम का ज्ञान होता है । विवेक द्वारा ही क्षेत्र की समुमित व्यवस्था होती है ।

530- मनुष्य को क्षेत्र सुलभ है परन्तु व्यवस्था की कमी है । सत्य, शान्ति और आनन्द सुलभ है, प्राप्त ही है परन्तु दृष्टि नहीं खुली है । विचार शान्त होने पर, शून्य हेने पर विवेक काम करता है ।

531- प्रचार बहुत हो रहे हैं पर विचार में असावधानी है । कुछ विद्वान विचार के प्रसारक है पर दृष्टि के उपचार में प्रमाद है । दर्शन

के लिये दृष्टि का उपचार अनिवार्य है।

532– दिव्य चक्षु खोलने के लिये शान्त रहना होगा । विचारों के प्रवाह में न बह कर दृष्टा होकर मौन रहना होगा । कर्ता न बन कर साक्षी होकर देखना होगा ।

533– कदाचित प्रारब्धवश अनिवार्य संकट से घिर जाओ, कोई कष्ट असहाय प्रतीत होने लगे तब उपवास करो और अन्तरस्थ प्रभु से प्रार्थना करते रहो ।

534– प्रार्थना असीम से सम्बन्धित करती है जो दुखी होकर अपना दोष नहीं देखता, जो निर्धन हेकर अपनी इच्छाओं को नहीं समेटता, अर्थात प्रतिकूलता की वेदना की सहन नहीं करता, जो धनी होकर दान नहीं करता, जो अवकाश पाकर आत्मा–परमात्मा के योगानुभूति की साधना से तत्पर नहीं रहता, वह यहाँ मूढ़

है, अभागी है, उसका जीवन अनर्थमय है ।

535– जो कृपण है, कठोर है, भेददर्शी है, संशययुक्त है, अहंकारी अभिमानी है, वह भक्त नहीं हो सकता । सच्चिदानन्द सागर में इस 'मैं' को घट के समान देखो ।

536– सब में एक परमात्मा ही है यह निश्चय ज्ञान है उसी की निरन्तर अनुभूति को विज्ञान कहते है ।

537– हमें समझाया गया है कि ध्यान में जब कोई विचार न हो, किसी की स्मृति न हो कोई कल्पना न हो, उस शून्य स्थिति में परमात्मा की अनुभूति होती है । चेतना की पूर्ण जाग्रति में परमात्मा की अनुभूति होती है ।

538– जहाँ विचार, कल्पनायें स्मृतियाँ समाप्त होती हैं वहीं दर्शन आरम्भ होता है ।

539- जहाँ हमारे अतिरिक्त किसी अन्य का प्रवेश नहीं है वहीं हमारी आत्मा है ।

540- जहाँ चेतन स्वरूप के बोध का अभाव है वहीं मन है जहाँ मन का अभाव है वहीं चेतन स्वरूप आत्मा का बोध होता है ।

541- जहाँ मैं नहीं है अहंकार नहीं है वहीं परमात्मा है ।

542- अहंयुक्त आत्मा ही जीव है । अहंकार से मुक्त आत्मा ही परमात्मा है ।

543- बुद्धि युक्त होकर संयम को साध लेना मनुष्यता है ।

544- मन को परमात्मा में लगाना, राग द्वेष रहित होना दिव्यता है ।

545- जिससे दोषों की निवृत्ति हो वही उत्तम साधना है ।

546- अहंता ममता आसक्ति कामना की

समाप्ति ही सिद्धि है ।

547- जिसमें अपार धीरज है, पूर्ण दृढ़ता है, एकाग्र निष्ठा है और पूर्ण शक्ति है उसी की उपासना पूर्ण होती है ।

548- मन्दिरों में प्रायः सभी भिखारी बन कर मांगने ही जाते हैं । आप शान्ति सन्तोष कृतार्थता से भरे हुए प्रभु को धन्यवाद देने जाओ ।

549- उमा योग जप दान तप, नाना भाव ब्रत नेम ।

राम कृपा नहिं करहिं तस, जस निस्केवल प्रेम ।।

550- प्रेम तभी सम्भव है जब हृदय में आनन्द का द्वार खुल गया हो । अभावों के पूर्ण अभाव में ही आनन्द शेष रहता है । स्वरूप ही दैवी सम्पदा से पूर्ण है ।

551– ''विगतेच्छा भय क्रोधों यः सदा मुक्त एव सः'' गीता 5/28– जो इच्छा भय क्रोध से रहित है वह मुक्त ही है ।

552– शान्ति समता सौम्यता अनासक्ति ही जिसका स्वभाव है वह नित्य युक्त योगी है।

553– अस्थिर बुद्धि से आत्मानुभव नहीं होता, किसी प्रकार का चिन्तन चलते रहने से बुद्धि स्थिर नहीं होती ।

554– अहंकार के रहते हुए अशान्ति है, वह अहंकार की शान्ति खोज रहा है । साधक का अहंकार अति सूक्ष्म है । अहंकार को ही सभी कुछ सबसे अधिक चाहिए ।

555– कर्ता वही बनता है जो परमात्मा को भूल जाता है ।

556– जब तक आप स्वयं के आन्तरिम सत्य को नहीं जानते तब तक दरिद्र ही रहोगे ।

जहाँ संदेह है, खोज है, वहीं अहंकार की दरिद्रता है ।

557– जीवन के सत्य को वही जानता है जो स्थिर है ।

558– स्वयं से भागना अस्वस्थता है । स्वयं में स्थिर होने से स्वस्थता आती है ।

559– हमारे लिये यह गुरू वाक्य भी मन्त्र स्वरूप है :– लिसकी उत्पत्ति नहीं होती उसका विनाश नहीं होता । जिसका विनाश नहीं होता उससे दूरी नहीं होती । जिससे कभी दूरी सम्भव नहीं उसे अपने में ही पा सकते हैं । जो नित्य निरन्तर प्राप्त है वही सत्य है वही जीवन है ।

560– परमात्मा प्रभु के अतिरिक्त किसी का चिन्तन न करने से उसी का योगानुभव होता है ।

561– करने से भोग, न करने से योग स्वतः हो जाता है ।

562– किरन की तरह लुटो तिमिर से नफरत न करो ।

नदी की तरह बहो तट से मुहब्बत न करो ।

उठो पर्वत से मगर बादलों जैसे बरसो ।

फूल से खिलो झरो कोई वसीयत न करो ।

---000---

देखों जो कोई देख सको गुरूजन तो दिखाये जाते हैं ।

देखों जो कोई देख सको गुरूजन तो दिखाये जाते हैं ।
इस अहंकार के द्वारा कितने दोष बढ़ाये जाते हैं ।।
मतिमान चतुर अति कुटिल बने, जनता सेवक पदलोलुम है।

धनवान प्रशासन करते हैं गुणवान हटाये जाते हैं ।।

स्वारथी समाज सुधारक हैं, उद्धारक शक्तिहीन दिखते ।
कुछ धर्म प्रचारक धन लेकर जीविका कमाये जाते हैं ।।

जो प्राप्त भोग का भाग न दे, भोगते अकेले ही सब कुछ ।
तब वही भोग भोजन ही, उस भोगी को खाये जाते हैं ।।

पण्डित कहते गोदान करो, पर लोभ में दिया नहीं जाता ।
लोभी से बीस आने के ही गोदान कराये जाते हैं ।।

जो स्वर्ग चाहते पुण्य बिना, पापों के होते नर्क नहीं ।
वह व्यक्ति लोभ या भय वश ही तीरथ में नहाये जाते हैं।।

ईश्वर की प्रकृति में सर्वोपरि इस अहंकार की लीला है ।
इसके मनमाने कितने ही भगवान बनाये जाते हैं ।।

भक्तों के प्रेम में नाचे थे भगवान कभी आनन्दित हो ।

अब अहंकार की तृप्ति हेतु भगवान नचाये जाते हैं ।।

जिसका अस्तित्व सत्य ही है, जो दिखता आत्मज्ञान द्वारा ।
उस अहंकार के पार 'पथिक' निज प्रभुमय पाये जाते हैं ।।